॥ श्रीहरिः ॥ 164

भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा

(पढ़ो, समझो और करो)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा

(पढ़ो, समझो और करो)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

इस पुस्तकमें कल्याणमें प्रकाशित पढ़ो, समझो और करो शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित सत्प्रेरणा देनेवाली घटनाओंका संग्रह है। ये घटनाएँ बहुत ही रोचक, उपदेशप्रद तथा इनके अनुसार जीवन-पथका निर्धारण करनेसे परम कल्याण करनेवाली हैं। इसके अध्ययन तथा प्रचारके पुण्यकार्यमें संलग्न होकर सब लोग लाभ उठावें, यह विनीत निवेदन है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा

रामानन्द और रामप्रसाद दोनों भाइयोंमें सब चीजोंका प्रसन्नतापूर्वक बँटवारा हो गया। दोनों अलग-अलग रहने लगे। अलग काम करने लगे। बरसों बीत गये। एक दिन दीवालीके अवसरपर रामानन्द घरके पुराने कागजोंका बुगचा (पुलिन्दा) खोलकर देख रहे थे—इसलिये कि व्यर्थके कागजोंको देखकर फेंक दिया जाय। देखते-देखते उन कागजोंके बीचमें उनके पिताजीका रखा हुआ एक पीतलका डिब्बा मिला। खोलकर देखा तो उसमें उनकी माताजीके चार सोनेके गहने थे। उन्होंने अपनी पत्नीको बुलाकर दिखाया। तौलकर देखा तो लगभग १४० तोले सोना था। उस समय खरे ठोस सोनेके ही गहने बनते थे। पत्नीने कहा—'गहना सासुजीका है, अतएव इसमें आप दोनों भाइयोंका हक है। आप इसका आधा हिस्सा अपने भाई रामप्रसादजीको दे दीजिये—आजकल उनकी हालत भी तंग है।' इसपर रामानन्दने कहा—'तुम्हारी बात तो ठीक है, पर तुम जानती हो—अपने भी पैसेकी जरूरत है, लड़कीका ब्याह अगली साल करना है, यह गहना ब्याहमें काम आ जायगा। फिर रामप्रसादकी स्त्री तो तुमको मिलनेपर सदा जली-कटी सुनाती और हर जगह तुम्हारी बदनामी करती रहती है, उसे यह गहना देकर साँपको दूध पिलाना होगा। वह कहेगी कि न मालूम इन्होंने बेईमानी करके कितना धन और रख लिया होगा।' रामानन्दकी भली पत्नी बोली—'भगवान् तो सब देख रहे हैं, वही फिर

भी देखेंगे। मेरी देवरानी भोली है और इस समय कष्टमें है, इसलिये वह बिना समझे-बूझे यदि कुछ कह देती है तो उससे हमारा क्या बिगड़ जाता है। भगवान्‌के सामने तो हम सच्चे हैं और जो भगवान्‌के सामने सच्चा है वही सच्चा है; परंतु आज यदि हम इस गहनेपर नीयत बिगाड़ लेंगे तो भगवान् क्या समझेंगे। मैं तो समझती हूँ, भगवान् मेरी देवरानीको सुबुद्धि देंगे—मैं भगवान्‌से प्रार्थना करूँगी और उसकी भावना भी बदल जायगी। वह प्रेम करने लगेगी।

पत्नीकी बात रामानन्दकी समझमें आ गयी। वे गहनेका डिब्बा लेकर छोटे भाई रामप्रसादके घर पहुँचे। डिब्बा कैसे कहाँ मिला, सब बतलाया और फिर उनकी पति-पत्नीमें क्या बातें हुई थीं, वे भी सब कह दीं तथा बोले कि 'भैया! मेरे मनमें तो बेईमानीका अंकुर पैदा होने लगा था, पर तुम्हारी नेक भाभीने उसे तुरंत बीजसमेत उखाड़कर फेंक दिया।'

इस बर्तावका रामप्रसादपर बड़ा ही अच्छा असर पड़ा और भगवत्कृपासे रामप्रसादकी स्त्रीकी सारी भावना तुरंत ही बदल गयी। उन्हें उस दिन रुपयोंकी सख्त जरूरत थी, एक नालिशकी कुर्की आनेवाली थी। उसने समझा कि रामानन्दजी तथा उनकी पत्नीके रूपमें भगवान्‌ने ही यह सहायता भेजी है। वह जेठानीके पास दौड़ी गयी, रोकर क्षमा माँगने लगी। जेठानीने उठाकर हृदयसे लगा लिया और आँसू बहाती हुई उसे अपार स्नेहसुधाका दान किया। दोनों परिवारोंमें एकात्मता जाग उठी और आनन्द छा गया।

—गणेशदास मोदी

वेद-मन्त्रोंका चमत्कार

सन् १९५५ के अप्रैलमें ग्राम नरहरिपुर जिला बाराबंकीमें 'विष्णुयज्ञ' हुआ था। यह यज्ञ नरहरिपुरके निवासी पण्डित लक्ष्मीचन्द्र तिवारीने पूज्य श्री १०८ स्वामी नारदानन्दजी सरस्वतीकी सत्प्रेरणासे करवाया था। मैं काशीसे यज्ञका 'आचार्य' होकर गया। यज्ञकी पूर्णाहुति होनेके बाद मैं उसी दिन आवश्यक कार्यवश काशी आनेके लिये तैयार हो गया। काशी आनेके लिये नरहरिपुरसे 'रुदौली' रेलवे स्टेशन पहुँचना पड़ता है, जो नरहरिपुरसे लगभग ६-७ मीलकी दूरीपर है। वहाँका मार्ग पक्का न होनेके कारण यातायातका साधन केवल बैलगाड़ी है। अतः मैं भी अपने दो साथियों (वेदाचार्य पं० जगदानन्द झा, अध्यापक—गवर्नमेण्ट-संस्कृत कॉलेज, पटना तथा पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी (कल्लोजी) सारस्वत, काशी)-के साथ बैलगाड़ीमें सवार हो गया। उसी समय नरहरिपुरके दो वृद्ध पुरुष वहाँ उपस्थित होकर बोले—'पण्डितजी! यहाँसे रात्रिमें रुदौली स्टेशन जाना खतरेसे खाली नहीं है। मार्गमें चोर-डाकू पड़ते हैं, जो लूट-पाट ही नहीं करते, किन्तु पथिकोंको मारते-पीटते और नग्नतक कर देते हैं। अतः रात्रिमें न जाकर दिनमें जाइयेगा।' मैंने कहा—'मेरे पास चोर-डाकुओंसे बचनेके लिये अचूक उपाय है, मुझे चोर-डाकुओंका भय नहीं।' कहकर हमलोग रात्रिको ९ बजे स्टेशनके लिये रवाना हो गये।

वसन्त-ऋतु और चैत्रका महीना था। रात्रिको चैती हवा कभी मन्द और कभी तेज चलती थी, जो हम सभीको सुखद और सुहावनी प्रतीत हो रही थी। यज्ञकी व्यस्ततासे मैं श्रान्त था, अतः

बैलगाड़ीमें निद्रा आ गयी। समतल भूमि न होनेके कारण बैलगाड़ीके भयंकर खटर-पटर शब्दसे कुछ ही देर बाद मेरी नींद उचट गयी। दोनों साथियोंने अत्यन्त भयभीत मुद्रामें मुझसे कहा—'बहुत देरसे हमारे पीछे तीन आदमी लगे हैं और उनके हाथमें टार्च भी है, जिसको कभी-कभी जलाते भी हैं। देखिये वे ही तीनों आदमी हैं जो हमारी ओर लपके चले आ रहे हैं।'

मैंने बैलगाड़ीके चालकसे पूछा—'हमारे पीछे जो आदमी लगे हैं, इनके बारेमें तुम्हारा क्या खयाल है?' गाड़ीवानने कहा—'ये चोर-डाकू मालूम होते हैं।' गाड़ीवानकी बात सुनकर मेरे साथी बोले—'हमलोगोंसे भूल हो गयी; जो वृद्ध पुरुषोंके रोकनेपर भी रात्रिको चल पड़े।' मैंने निर्भीक होकर कहा—'आपलोग तनिक भी न घबरायें। एक बार मेरे स्वर्गीय श्रीपिताजी (महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड)-ने मुझे मार्गमें चोर-डाकूसे त्राण पानेके लिये वेदके कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र बतलाये थे, जिनके ग्यारह अथवा पाँच बार पाठ करनेसे निश्चित ही चोर-डाकुओंसे रक्षा होती है। अतः अब हमें उन वेद-मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। अवश्य ही वेद-भगवान् हमारी रक्षा करेंगे।' पश्चात् हम सभीने श्रीपिताजीके बतलाये हुए निम्नलिखित वेदमन्त्रोंका उच्चस्वरसे एक स्वरमें होकर पाठ प्रारम्भ कर दिया—

'रक्षोहणं बलगहनम्०'	(शु० य० ५ । २३—२५)
'रक्षसां भागः०'	(शु० य० ६ । १६)
'योऽअस्मभ्यम्०'	(शु० य० ११ । ८०)
'आयुर्म्मे पाहि०'	(शु० य० १४ । १७)
'अग्नेर्भागोऽसि०'	(शु० य० १४ । २४—२६)
'नमःकृत्स्नायतया०'	(शु० य० १६ । २०—२२)
'कृणुष्व पाजः०'	(शु० य० १३ । ९—१४)

हमलोग बार-बार उपर्युक्त वेद-मन्त्रोंका पाठ कर रहे थे कि मार्गमें एक गाँव आ गया। बैलगाड़ीके चालक तथा मेरे साथियोंकी सम्मति हुई कि 'गाँवमें गाड़ी रोककर रात्रि यहीं व्यतीत की जाय और प्रातःकाल स्टेशन चला जाय। इससे चोर-डाकूका खतरा दूर हो जायगा और चोर-डाकू भी वापस चले जायँगे।' मैंने कहा—'क्या आपलोगोंको वेद-मन्त्रोंपर विश्वास नहीं है, जो भयभीत होकर यहाँ ठहरनेकी बात कह रहे हैं?' मेरे साथी संकोचके साथ दबे स्वरमें बोले—'हमें वेद-मन्त्रोंपर पूर्ण विश्वास है।' मैंने कहा—'तब मार्गमें रुकनेकी आवश्यकता नहीं है। आज वेद-मन्त्रोंके चमत्कार देखनेका अवसर उपस्थित है। अवश्य ही वेद-भगवान् हम सबकी रक्षा करेंगे।' बैलगाड़ी रोकी नहीं गयी और हमलोगोंका वेदपाठ पूर्ववत् चलता रहा। जब गाड़ी गाँवसे लगभग आधा मील आगे पहुँची, तो फिर वे तीनों टार्च जलाते हुए दिखायी देने लगे।

जिस प्रकार हमलोग उच्चस्वरसे वेद-पाठ कर रहे थे, ठीक उसी प्रकार गाड़ीवान भी बड़ी तेजीसे गाड़ी हाँक रहा था। बैलगाड़ीकी गतिके अनुकूल वे चोर-डाकू भी सपाटेके साथ हमारी ओर लपके आ रहे थे। हमें इस बातका अवश्य आश्चर्य हो रहा था कि कई मीलसे चोर-डाकू हमारा पीछा करते हुए भी हमसे लगभग दो-तीन फर्लांग दूर-दूर ही चलते रहे और हमारे सम्मुख नहीं आये। इधर हमारा वेद-मन्त्र-पाठ नौ बार समाप्त हो रहा था कि बीचमें ही गाड़ीवान बोला—'पण्डितजी! अब यहाँसे स्टेशन सिर्फ एक मील रह गया है और अब वे चोर-डाकू भी दिखलायी नहीं देते।' हम सभीने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी तो पीछा करनेवाले पुरुषोंका कुछ पता नहीं चला। पश्चात् हम सभीने नित्य, अनादि अपौरुषेय वेद-भगवान्‌की ही

महती कृपा समझी, जिनकी कृपासे वे चोर-डाकू स्वतः वापस चले गये और हमलोग दो बजे सानन्द स्टेशन पहुँच गये। स्टेशन पहुँचनेपर वहाँके स्टेशन-मास्टर तथा अन्य कई सज्जनोंने पूछा—'आपलोग कहाँसे आ रहे हैं?' मैंने कहा—'यज्ञ कराकर नरहरिपुरसे आ रहे हैं।' सभीने साश्चर्य कहा—'नरहरिपुरके मनुष्य बड़े आततायी मालूम होते हैं, जिन्होंने रात्रिमें यहाँ आनेके लिये आपलोगोंको रोका नहीं। उन्हें तो मालूम है यह मार्ग बड़ा खतरनाक है।' मैंने कहा—'गाँववालोंका कोई दोष नहीं, उन्होंने मना किया था; किंतु मैं जान-बूझकर वहाँ रुका नहीं। मुझे वेद-मन्त्रोंपर पूर्ण विश्वास और भरोसा था कि यदि मार्गमें किसी प्रकारकी विपत्ति पड़ेगी, तो अवश्य ही वेद-मन्त्रोंद्वारा हमारी रक्षा होगी। मार्गमें जो चोर-डाकू मिले थे वे वेदपाठके प्रभावसे वापस चले गये, जिससे हम यहाँ सुरक्षित पहुँच गये।' इस घटनाको सुनकर सब लोग दंग रह गये। सभीने वेदके चमत्कारपर विश्वास एवं श्रद्धा व्यक्त की।

'**वेदो नारायणः साक्षात्**' (भागवत ६। १। ४०)-के अनुसार जो लोग वेदोंमें श्रद्धा और विश्वास रखते हैं, उनकी आज भी वेद-भगवान् सर्व प्रकारसे रक्षा करते हैं।

लेख-विस्तारके भयसे मैंने पूरे मन्त्रोंका उल्लेख न कर केवल मन्त्रोंके प्रतीक, अध्याय और मन्त्र-संख्याका उल्लेख किया है। मैंने जो मन्त्र लिखे हैं, इनमेंसे बहुत-से मन्त्र 'रक्षोघ्नसूक्त' नामसे प्रसिद्ध हैं। रक्षोघ्नसूक्तके पाठ करनेसे राक्षस, भूत, प्रेत, चोर आदिका भय नहीं रहता, ऐसी फलश्रुति है, जिसका मुझे प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ।

—याज्ञिक सम्राट् श्रीवेणीराम शर्मा गौड, वेदाचार्य

प्रभुकी दिव्य कृपाकी प्रत्यक्षानुभूति

मेरे एक सहृदय वयोवृद्ध भगवद्भक्त स्नेहीद्वारा वर्णित घटना निम्नवत् है—

'दिनांक १८ अक्टूबर १९६१ तदनुसार आश्विन शुक्ल ९, संवत् २०१८ विक्रमीकी घटना है। खरगोन (म० प्र०)-से लगभग १६ मीलकी दूरीपर स्थित बभनाला और सेलदा ग्रामोंके मध्य एक तपोमूर्ति महात्माश्रीका पवित्र आश्रम है। आश्रम पुण्यतोया वेदा नदीके तटपर सुस्थित है। पूज्य महात्माजी प्रत्येक वर्षकी आश्विन शुक्ल नवमीको नवरात्रके उपलक्ष्यमें कन्याओंको भोजन कराते हैं। घटनाकी तिथिको भी वही पुण्यकर्म सम्पन्न करनेका निश्चय किया गया। मैंने पूज्य महात्माजीके दर्शन करनेका विनम्रभावसे सुसंकल्प किया। तदनुसार मैं इसी दिन खरगोनसे प्रस्थित हुआ। साथमें दो वयोवृद्ध वैष्णव भक्त तथा मेरा एक पुत्र (अवस्था १२ वर्ष) तथा मेरी पोती (अवस्था ५ वर्ष) थी। मोटरकार बभनाला ग्राममें छोड़ दी गयी। सारा समुदाय पैदल वेदा नदीके तटपर पहुँचा। नदीपर पुल आदि नहीं है। वर्षा-ऋतुमें छोटी नावोंके सहारे नदी पार करनी पड़ती है। वर्षा-ऋतुके पश्चात् नदीका जल सूख जाता है और नदीको वैसे पैदल ही पार किया जा सकता है। इस वर्ष संयोगवश अतिवृष्टिके कारण नदी अथाह जलराशिसे परिपूरित थी और जल-प्रवाह भी तीव्र वेगमय था।

नदी पार करनेके लिये एक छोटी नाव किरायेसे की गयी। मैंने सभी सज्जनोंको उसमें बैठाया और अन्तमें मैं स्वयं बैठा। पूज्य महात्माजीके पाद-पद्मोंमें भेंट करनेके लिये मैंने अपने साथ एक मन आटा तथा दो टोकरी फल आदि ले रखे थे। वे पदार्थ भी नावमें यथास्थान रख दिये गये। नावने अथाह जलराशिमें गतिशील होना प्रारम्भ किया। शीघ्र ही नाव दूसरे किनारेके निकट आ पहुँची। वहाँ जलका प्रबलतम वेग था और जलकी गहराई भी १५-२० फीटसे कम न होगी। सभी पूर्ण आनन्दानुभूतिसे प्रकृतिके सुरम्य भागोंके दर्शन करते हुए महात्माजीके दर्शनकी लालसासे अनुरागित होकर गन्तव्य स्थलतक पहुँचनेके क्षणकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सहसा घटनाचक्रमें परिवर्तन हुआ। जलके वेगमय सुदृढ़ आघात-प्रतिघातोंसे नाव अपना संतुलन खो बैठी। नाविकने अपने सहज धैर्यको तिलांजलि दे दी। नाव एक भागपर सहसा लम्बाकार होने लगी और उसी भागसे उसमें जल भरने लगा। मेरे मनमें सहसा यह भाव उत्पन्न हुआ कि यह अस्थायी संतुलन-परिवर्तन ही है। अतएव लम्बाकार उत्थित भागको दबानेके लिये हम उधर बढ़ने लगे। परंतु स्थिति भयंकर होती गयी। नाव जलके प्रहारसे प्रकम्पित होने लगी और हमारे दो वयोवृद्ध साथी भयमिश्रित शब्दोच्चारण करने लगे। पर ईश्वरीय अनुग्रहसे मेरी मनःस्थिति अप्रत्याशितरूपमें आश्चर्यमयी हो गयी। मेरे मुखसे केवल ये ही शब्द निकले—सुरेन्द्र और मंजुको सँभालना। मन विचारोंसे सर्वथा शून्य हो गया। मैं अर्द्धनिमीलित नेत्रोंसे सारे दृश्यको देखता रह गया। अचानक नेत्रोंके समक्ष सरिताके समीपस्थ तटपर स्थित एक वृक्षकी शाखाएँ हाथमें आने लगीं।

ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी अद्वितीय महान् शक्तिने इस वृक्षकी सुदृढ़ शाखाएँ हम सबके हाथोंके समीप ला दीं और साथ ही उन्हें हाथोंसे भी पकड़वा दिया। मैंने सुरेन्द्र और मंजुके कोमल हाथोंको भी इन शाखाओंको सुदृढ़तासे पकड़े हुए देखा। एक ही क्षणमें नाव हमारे पैरोंके नीचेसे अनन्त जलराशिमें अपने अस्तित्वको विनष्ट करनेके लिये तीव्र वेगसे बढ़ गयी और हम पाँचों प्राणी वृक्षकी शाखाओंसे लटके रह गये। न जाने कब किसी व्यक्तिने तटपरसे वृक्षपर चढ़कर हम पाँचोंको खींचकर तटके भूमि-भागपर खड़ा कर दिया। हमारे साथका सारा सामान नावके साथ ही उस विराट्में निमग्न हो गया।

तटपर आकर मेरी मनःस्थितिमें परिवर्तन हुआ और मेरे हृदयमें शनैः-शनैः भावोंका उद्रेक होने लगा। विश्वास मानिये कि घटना घटित होते समय मेरे मनमें न भय था, न शोक, न विषाद और न ऐसी स्थिति कि प्रभुके दिव्य नामोंसे उन्हें पुकार सकूँ और रक्षाहेतु आर्तनाद कर सकूँ। अब प्रभुकी असीम कृपाको स्मरणकर नेत्रोंसे अश्रुओंकी अविरल धारा प्रवाहित होने लगी और ऐसा भासित होने लगा कि दयानिधि करुणावरुणालय प्रभु किस प्रकार अपने वरद-हस्त बढ़ाकर अभयदान एवं आश्रय देते हैं। मैं अपने गुरु महाराजकी दिव्य वाणीके अचेतनभाव ग्रहण करने लगा—

वे सुखमें क्या दुखमें कभी भी
न छोड़ते हैं हमको अकेला।
वे साथमें ही रहते हैं सदा
सम्हालनेको हमको हमेशा॥

तटसे आगे बढ़कर हमने पूज्य महात्माके चरणारविन्दोंमें

नमन किया और घटनाका प्रत्यक्ष विवरण उनके समक्ष प्रस्तुत किया। पूज्य महात्माजीने शान्तिप्रद मुसकराहटमें यही कहा— 'प्रभु दीनवत्सल हैं।' इस घटनासे उन्हें न कोई संताप हुआ और न उन्होंने हमारे प्रति कोई संवेदना ही प्रकट की। वे प्रभुके दिव्य अनुग्रहका स्मरण करके भावमग्न होकर चुप बैठे रहे।

—भगवानदास झा, एम्० ए०, बी० एस्-सी०, एल्० टी०, सा० र०

सत्संगतिका परिणाम

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। मेरा भानजा मेरे पास रहता था और नीचे कपड़ेकी दूकानमें अकेला ही सोता था। एक दिन अल्मारीमेंसे छः सौ रुपये निकालकर ले गया। कई वर्षोंके बाद इसी ज्येष्ठमें वह आया और अपनी मामीके चरणोंमें गिरकर बोला— 'मामीजी! यह लो अपने रुपये। मैं आपका बच्चा हूँ। मेरे अपराधको क्षमा करो।' उसकी मामीने रुपये लेनेको बहुत ही इन्कार किया, परंतु मना करनेपर भी वह रुपये देकर चला गया। लगभग एक महीने बाद उसका पत्र आया। उसमें लिखा था—'श्रीमामाजी तथा मामीजीके चरणोंमें अनन्त बार नमस्कार। मैं आपके छः सौ रुपये लौटा देनेमें अपनी कोई मानवता नहीं समझता। वे तो मुझे देने ही थे। इस जन्ममें न देता, किसी और जन्ममें बैल, गधा आदि बनकर देता। अमानत, चोरी-ठगी, अन्याय आदिका पैसा भगवान्‌के कानूनमें वापिस देना पड़ता है। यमदूतोंकी मार और नरककी यात्रा रही अलग।' तभी तो श्रीभक्त कबीरजीने हमारी भलाईके लिये कहा है—

कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय॥

और फिर अन्यायका पैसा ठहरता भी नहीं। नीतिमें कहा है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

'अन्यायसे पैदा किया हुआ धन अधिक-से-अधिक दस वर्ष

ठहरता है। ग्यारहवें वर्ष वह धन मूलसहित नष्ट हो जाता है।'

इस प्रकारके बहुत-से वाक्य पत्रमें लिखे थे। मैं तो यही कहूँगा कि रुपये निकालना कुसंगका प्रभाव था—

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

और रुपये लौटा देना प्रभुकी कृपा तथा सत्संगका प्रभाव—

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने स्वर्ग और मोक्षके सुखसे सत्संगके सुखको बड़ा बताया है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

—रामस्वरूप बजाज

दस्युओंद्वारा उपकारका बदला और ब्राह्मणका त्याग

आज इस भौतिक युगमें मानवता एवं नैतिकताका दिनोदिन ह्रास हो रहा है। मनुष्य अपने स्वार्थके लिये बुरे-से-बुरे, जघन्य-से-जघन्य काम करनेमें भी नहीं हिचकता। नीचे एक सच्ची घटना लिखी जा रही है, जिसमें लुटेरों एवं एक त्यागी विप्रके कृतज्ञता और त्यागका वर्णन है। घटना यद्यपि कुछ वर्षों पुरानी है। चित्तौड़ जिलेके एक कस्बेमें भगवद्भक्त ब्राह्मण सपरिवार रहते थे। वे सात्त्विक जीवन व्यतीत करते थे। उस समय आजकल-जैसा बाहरी आडम्बर गाँवोंमें नहीं पहुँचा था। अमीर-गरीब, हिंदू-मुसलिमका भेदभाव भी वहाँ नहीं था। ग्रामवासी सीधे-सादे, सात्त्विक, एक-दूसरेके दु:ख-सुखमें सहायता करनेवाले, निष्कपट, परिश्रमी एवं आस्तिक होते थे। इन ब्राह्मण सज्जनमें ये सभी गुण मौजूद थे। गीताका नित्य पाठ करते थे। संध्या, हवन, पाठ-पूजा करना इनका नित्यका कर्म था। रियासतकी ओरसे इन्हें कृषिके लिये कुछ भूमि मिली हुई थी। गाँवके वैष्णव-मन्दिरके पुजारी भी थे। एक दिन प्रात: ब्राह्ममुहूर्तमें ये जब शौचादिसे निवृत्त हो लौट रहे थे तो मार्गमें इन्हें कुछ आदमी मिले और उन्होंने इन्हें ब्राह्मण समझकर प्रणाम किया। तदनन्तर इन्हें कुछ दूर अपने साथ अलग ले गये जहाँ निर्जन वन था। ये व्यक्ति डाकू थे। वनमें कई ऊँट

थे। वहाँ उनका सरदार ठहरा हुआ था। दस्यु-सरदारने पण्डितजीको प्रणाम कर अपने पास बैठनेको कहा। पण्डितजीने अपनेको लुटेरोंके बीच पाकर कुछ भयका अनुभव किया। सरदारने कहा—पण्डितजी! डरो मत, हम आपको लूटने नहीं आये हैं। बात यह है कि हम बहुत दूरसे आ रहे हैं, रास्तेमें कहीं भोजनका प्रबन्ध नहीं हो सका, अगर आप हमारे लिये एक मन आटा और कुछ घी, दाल इत्यादि खाद्य-सामग्रीका प्रबन्ध कर दें, तो हम आपका बड़ा उपकार मानेंगे। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।' सरदारके स्वरमें दीनता थी। सभी दस्यु भूखे थे। पण्डितजीने मनमें विचार किया कि भूखे लोगोंको अन्नदान करना गृहस्थका प्रथम कर्तव्य है।

अतः उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली। वे गाँवको चले गये। दस्यु-सरदारने उनके साथ अपने आदमी नहीं भेजे। ऐसा करनेसे वे पुलिसके हाथ पकड़े जा सकते थे। पण्डितजी अपने घर गये। यदि वे चाहते तो डाकुओंको पुलिसके हाथों पकड़वाकर काफी इनाम प्राप्त कर सकते थे; किंतु मानवता, सत्यता, धर्म तथा ईमानदारीको कैसे धोखा दे सकते थे? उन्होंने किसीसे इस बातका जिक्रतक नहीं किया। घरसे चुपचाप स्वयं ही साथ एक आदमी लेकर एक मन आटा, कुछ घी, दाल आदि सामग्री ले चले। वनमें जाकर दस्युओंके डेरेपर वह सामान पहुँचा दिया।

दस्युओंने भोजन बनाया। भोजन प्राप्त कर दस्यु-सरदारने पण्डितजीको धन्यवाद दिया। दस्यु-सरदार अपने दलसहित आगेको चल दिया और पण्डितजी अपने घरको लौट आये।

× × × ×

कुछ महीनों पश्चात् एक बार यही पण्डितजी उसी वनकी ओर घूमने जा रहे थे, अकस्मात् वे ही दस्यु फिर इन्हें मिले और पण्डितजीको अपने सरदारके पास ले गये। सरदारने इनको प्रणाम करके कहा—'पण्डितजी! आपके उस दिनका उपकार हम नहीं भूले हैं—अब हम अपने प्रयत्नसे यह बहुत-सा माल अनेक प्रदेशोंसे लूटकर लाये हैं। आप किसी भी एक संदूकको ले लीजिये। उसमें जो भी निकलेगा, आपका होगा।' पण्डितजीने लोभ या कौतूहलवश एक संदूकपर हाथ रख दिया। उसे खोला गया तो उसमें हजारों रुपयोंका सोना था। सरदारने पण्डितजीको संदूक छिपाकर घर ले जानेको कहा।

अब धर्मभीरु तथा विद्वान् पण्डितजीके मनमें धर्मका भय और '**परद्रव्येषु लोष्टवत्**' आदि शिक्षा-सम्बन्धी बातें आने लगीं। गीताके धन और पत्थरमें समानभाववाले गुणातीत व्यक्तिका ध्यान आया। श्लोककी मस्तिष्कमें स्मृति हो आयी—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

(गीता १४। २४)

वे अपने मनमें विचार करने लगे कि प्रथम तो धन है ही बुरी चीज, फिर यह धन तो लूटका है। जिसका यह धन होगा, उसका मन कितना दुःखी हो रहा होगा। ऐसे पापमय धनको ग्रहण कर मैं अपने परिवारको तामसिक स्थितिमें नहीं ले जा सकता। इस धनको लेना घोर पाप है। फिर, भूखेको भोजन देकर उसके बदलेमें धन लेना तो गृहस्थ-धर्मको कलंकित करना है। ऐसा विचारकर पण्डितजीने सरदारको धन लेनेसे एकदम इनकार कर दिया। सरदारने बहुत आग्रह किया; किंतु पण्डितजी

खाली हाथ ही घर लौट गये। यह था दस्यु-सरदारद्वारा उपकारका बदला और धर्मज्ञ पण्डितजीका आदर्श त्याग। इस घटनाको कई वर्षों बाद पण्डितजीने अपने स्वजातीय बन्धुओंको सुनाया था। उन्हीं सुननेवाले बन्धुओंमेंसे एक सज्जनने यह घटना मुझे सुनायी।

—प्राध्यापक श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

जुलाहेकी ईमानदारी

इलाहाबादसे लगभग २२-२३ मीलपर एक गाँव है—मऊआइमा। यहाँ अधिकतर जुलाहे रहा करते हैं, जो हाथ-करघेसे साड़ियों तथा खंड (ब्लाउजके कपड़े) बनाया तथा बेचा करते हैं। यहाँकी बनी हुई साड़ियाँ तथा ब्लाउजके कपड़ोंकी वैसे तो सभी स्थानोंपर खपत है तथापि महाराष्ट्र एवं गुजरातमें तो यहाँके कपड़ोंकी बहुत ही माँग है।

सन् १९५९ की घटना है। मेरे एक मित्र श्रीनरसिंहदासजीकी कपड़ेकी दूकान है। वे एक दिन साड़ियाँ खरीदनेके लिये मऊआइमा जा रहे थे। रविवारका दिन था, अतः मेरी छुट्टी होनेके कारण मैं भी घूमनेके दृष्टिकोणसे उनके साथ चला गया था। नरसिंहदासजी १,७०० रुपयेके सौ-सौके नोट अपने साथ ले गये थे। कोई व्यवस्थित मंडी न होनेके कारण व्यापारियोंको वहाँ जुलाहोंके घर-घर जाकर दस-दस, पाँच-पाँच साड़ियाँ खरीदनी पड़ती हैं। चूँकि जुलाहोंको हाथ-के-हाथ नकद भुगतान करना पड़ता है, इसलिये रुपये साथमें ही लिये रहना पड़ता है।

दिनभर घूम-घूमकर नरसिंहदासजीने माल खरीदा। मैं भी उनके साथ-साथ था। लगभग पाँच बजे सायंकाल एक जुलाहेके यहाँ करीब १४५ रु० का माल लिया गया था। चूँकि वहाँसे वापस आनेके लिये लगभग छः बजे गाड़ी मिलती थी, इसलिये जल्दबाजीमें पता नहीं कैसे मेरे व्यापारी मित्रके सौ-सौ रुपयेके तीन नोट उसी जुलाहेके मकानमें गिर गये। परंतु उस समय

नोटोंके गिरनेका न तो नरसिंहदासजीको ही ज्ञान था, न मुझे ही और न उस गरीब जुलाहेको ही।

वहाँसे सब साड़ियाँ इत्यादि एक गाँठमें बाँधकर तथा लगेज करवाकर छः बजेवाली गाड़ीसे हमलोग वापस आ गये। दूसरे दिन जब मैं नरसिंहदासजीसे मिला तो वे बहुत दुःखी थे। उन्होंने ३०० रु० खो जानेकी घटना मुझे भी सुनायी; सुनकर मुझे भी बड़ा अफसोस हुआ। मैंने कहा कि एक बार मऊआइमा जाकर खोजबीन करनी चाहिये। नरसिंहदासजी निराश हो चुके थे। कहने लगे—'भाई! दुनिया बड़ी बेईमान हो गयी है। यदि किसीको रुपये मिल भी गये होंगे तो वह क्यों लौटायेगा? बेकारमें जाने-आनेमें दो-चार रुपये और खर्च हो जायँगे । खोये हुए रुपये तो मिलनेसे रहे।'

लेकिन संतोष न हुआ। दूसरे दिन वे मऊआइमा गये। जिन-जिन जुलाहोंके यहाँ उन्होंने साड़ियाँ खरीदी थीं, उनके यहाँ गये; परंतु रुपयोंका पता न लगा। कुछ लोगोंने कहा भी कि 'लालाजी! आप बेकार परेशान न हों। आपके रुपये मिलने बहुत मुश्किल हैं।' निराश होकर तथा यह सोचकर कि जब आये ही हैं तो सभी जगह पूछ क्यों न लिया जाय, नरसिंहदासजी उस जुलाहेके यहाँ भी पहुँच गये, जिसके यहाँ सबके बादमें माल खरीदा गया था। इन्हें देखते ही वह जुलाहा, जो कि अपने मकानमें एकदम उदास बैठा था, खुश हो उठा तथा मेरे मित्र उससे कुछ पूछते, इसके पहले ही वह कहने लगा कि 'लालाजी! कल आपके ३०० रुपयेके नोट मेरे यहाँ गिर गये थे। नोट देखते ही मैं आपको ढूँढ़नेके लिये स्टेशनतक गया भी, परंतु गाड़ी छूट चुकी थी। लीजिये अपने रुपये सँभालिये तथा मुझे उऋण

कीजिये।' रुपये मिलनेपर नरसिंहदासजीकी खुशीका ठिकाना न रहा। उन्होंने जब उस गरीब जुलाहेको कुछ इनामके तौरपर देना चाहा तो उसने कुछ भी लेनेसे इनकार कर दिया। उनके बहुत आग्रह करनेपर उस गरीब जुलाहेने जो शब्द कहे थे वे वास्तवमें एक ईमानदार आदमी ही कह सकता है। उसने कहा—'लालाजी! आपके गिरे हुए रुपये वापस करके तो मैंने अपना फर्ज अदा किया है। यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यह आशीर्वाद दीजिये कि पराये धनके लिये मेरी नीयत कभी भी खराब न हो।'

दूसरे दिन जब नरसिंहदासजीने मुझे जुलाहेकी ईमानदारीके बारेमें बताया तो मेरा मस्तक भी उस गरीब एवं ईमानदार जुलाहेके प्रति श्रद्धासे झुक गया।

—श्यामसुन्दर अग्रवाल, एम्० कॉम०, एल-एल्० बी०

दमाकी सहज दवा

खानेका नमक १॥ (डेढ़) तोला लेकर सुनारकी सोना गलानेकी कुठालीमें पकवा लिया जाय। पकनेपर उसका भस्मरूप हो जायगा। उस नमकको खरल कर लिया जाय। रात्रिको भोजनके बाद दो मुनक्का (दाख) लेकर उनका बीज निकालकर वह १॥-१॥ रत्ती नमक उनमें भरकर गोली बना ली जाय। फिर धीरे-धीरे चूसकर दोनों मुनक्काकी गोलियोंको खा लें। इसके बाद तीन-चार घंटेतक जल नहीं पीना चाहिये। इस प्रकार ५-७ दिन इस औषधका प्रयोग करनेपर दमा (श्वास) रोगमें अवश्य लाभ होता है।

—फूलचन्द जैन 'पुष्प'

सहृदयता

मेरे एक मित्र बड़े उदारहृदय थे। पर उन दिनों उनका हाथ बहुत तंग था। बड़ी मुश्किलसे घरका काम चलता। इधर कई महीनोंसे अनाजवालेका दाम नहीं दिया गया था। उसके तीन-चार सौ रुपये चढ़ गये थे। उसने कहा कि कल रुपये नहीं दिये जायँगे तो अनाज नहीं दूँगा। घरमें बच्चे थे। मित्र बड़ी दुविधामें पड़ गये। वे अपने एक सम्बन्धीके पास गये और किसी तरह बड़ी विनय-प्रार्थना करके उनसे साढ़े तीन सौ रुपये लाये। रुपये लेकर घर आ रहे थे कि रास्तेमें उनके एक पुराने मित्र मिल गये। वे बहुत ही उदास थे, पूछनेपर पता लगा कि 'उनको किसीके तीन सौ रुपये देने थे, उसने नालिश करके डिगरी करवा ली और आज उनके घरपर कुर्की आ गयी। घरमें अपनी लड़कीका कुछ गहना था, उसे कुर्क किया जा रहा है। गहना एक हजारसे ऊपरका है, वह नीलाम हो जायगा। लड़की भी बड़ी गरीब है। उन्होंने बताया कि मैं एक घंटेकी मोहलत लेकर आया हूँ। कुर्कीवालोंने मुझे कृपा करके समय दे दिया। पर रुपये न देनेपर कुर्कीका माल ले जायँगे। मेरे घरमें और कुछ भी है नहीं। मैं इसीलिये तुम्हारे पास जा रहा था। मैं जानता हूँ तुम भी कष्टमें हो, पर दूसरा कोई दीखा नहीं। कुछ प्रबन्ध कर सको तो……' यों कहकर वे मित्र फुफकार मारकर रोने लगे। मेरे मित्रसे यह रोना नहीं देखा गया। उन्होंने साढ़े तीन सौ रुपये

उनको देकर कहा—'जल्दी जाकर अपना काम करो।'

इस प्रकार रुपये दे देनेसे उन्हें कुछ परेशानीमें पड़ना पड़ा, पर उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। भगवत्कृपासे कुछ दिनों बाद उनका अभाव दूर हो गया। सट्टेमें उन्हें काफी रुपये मिल गये।

—बल्लभदास

अपनी वेशभूषाके कारण प्राणरक्षा

संवत् २०११ वैशाखमासकी बात है, एक आवश्यक कार्यसे मैं मुजफ्फरपुर गया था, बाजारमें पहुँचनेपर मुझे खूब जोरोंकी प्यास लग गयी। सरैयागंज मुहल्लेमें एक कोठरीमें दो-चार नवयुवक बैठे कुछ बातें कर रहे थे। वे लोग काली लुंगी पहने हुए थे और शिखासे विहीन थे। अनुमानसे लगा कि ये किसी कॉलेज या स्कूलके छात्र हैं। उन लोगोंकी वेशभूषा देखकर मैं लौट चला। मुझे लौटते देखकर उनमेंसे एकने पूछा—'क्यों पण्डितजी?' मैंने कहा, 'कुछ नहीं, प्यास लगी है।' इसपर उसने कहा कि 'आइये पानी पीजिये।' तब मैंने कहा कि 'हमलोग मुसलमानका पानी नहीं पीते हैं।' इसपर खूब जोरोंसे हँसते हुए उन लोगोंने कहा कि 'पण्डितजी! हमलोग तो हिन्दू हैं।' तब फिर मैंने उनसे कहा कि 'यदि आप हिन्दू हैं तो अपना वेश मुसलमानोंका-सा क्यों बनाये हुए हैं? आपलोगोंको बिना चोटीके तथा काली लुंगी धारण किये देखकर मैंने समझा कि आपलोग मुसलमान होंगे। किंतु अब मैं आपके गलेमें यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। इसके लिये आपको धन्यवाद है। पर मेरा तो यही अनुरोध है कि आपलोगोंको अपनी वेशभूषा तथा आचार-विचार हिन्दुओंका ही रखना चाहिये।' यह कहकर मैं चल दिया। तब उनमेंसे एक छात्रने पूछा—'पण्डितजी! आपका मकान?' मैंने कहा—'मनियारी।' पुनः उसने पूछा—'पण्डितजी! आप रामेश्वर झाको जानते हैं?' मैंने कहा—'हाँ, मैं जानता हूँ।

मेरे मकानसे उनका मकान कुछ दूर पड़ता है।' तब उसने कहा—'वे मेरे मामा लगते हैं, मैं अगर कभी आऊँगा तो अवश्य आपसे भेंट करूँगा, आपका नाम क्या है?' मैं अपना नाम बताकर वहाँसे चला आया।

अब इसके बाद मैं इस साल संवत् २०१९ माघकी बात लिख रहा हूँ। वही पूर्वकथित छात्र अपने मामाके यहाँ मनियारी आया तो मुझसे भी भेंट करने आया। मैं उसका पवित्र ब्राह्मणोंकी-सी वेशभूषा देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। साँची धोती पहने, त्रिपुण्ड्र चन्दन लगाये, माथेपर पाग दिये, अँगरखा पहने था और शुद्ध मैथिली बोल रहा था। इस प्रकारका अपूर्व परिवर्तन देखकर मैंने पूछा—'कहिये, आजकल आप क्या कर रहे हैं? आपमें मैं बड़ा परिवर्तन देख रहा हूँ। लुंगीकी जगहपर साँची धोती है, सिरपर शिखा और चन्दन भी है।' इसपर उस छात्रने कहा कि 'मैं इस समय एम्० ए०का छात्र हूँ और इस अपूर्व परिवर्तनका कारण है—ठेस लगना। कई वर्ष हुए सीतामढ़ी मेलेमें हिंदू-मुसलिम दंगा हो गया था। सीतामढ़ीके समीप ही मेरा और मेरे साथीका, जिसको आपने मुजफ्फरपुरमें देखा था, घर पड़ता है। हमलोग मेला गये थे। संयोगवश मैं तो उस दिन धोती पहने था, किंतु मेरे साथी लुंगी धारण किये ही चल पड़े थे। होनहार बलवान् होता है। जिस समय हम दोनों वहाँ पहुँचे उस समय कई हिंदुओंके मुसलमानोंद्वारा मारे जानेके कारण क्रोधित हिंदूलोग हाथोंमें लट्ठ लिये मुसलमानोंको खोज-खोजकर मार रहे थे। अकस्मात् लुंगी पहने हुए मेरे मित्रपर उन लोगोंकी नजर पड़ गयी, बस, वे उसे पकड़कर मारने लगे। यह देखकर मैंने कहा कि 'अरे, यह तो हिंदू है, किंतु मेरे मित्रको लुंगी पहने

तथा शिखाहीन देखकर उन लोगोंको मेरे कथनपर विश्वास नहीं हुआ, बल्कि उनमेंसे एक आदमीने कहा कि 'अरे, यह भी तो मुसलमान ही मालूम होता है। देखो न इसके भी चोटी नहीं है।' यह कहकर उसने मुझे भी पकड़ लिया। दैवयोगसे मेरे गलेमें यज्ञोपवीत था। मैंने उनको अपना यज्ञोपवीत दिखाया। अपना तथा अपने मित्रका भी पूरा परिचय दिया, कई शपथें खायीं, तब बड़ी मुश्किलसे उन लोगोंसे हम दोनों छूट पाये। मेरे मित्र एक अच्छे खानदानके राजपूत हैं, किंतु आनन्दमार्गी होनेके कारण उन्होंने उपवीत उतार दिया था। अतः शिखासूत्रसे शून्य तथा लुंगीधारी होनेके कारण उनको हिंदू साबित करनेमें मुझे बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी। मार तो काफी पड़ी, परंतु परमेश्वरकी कृपासे उनके प्राण बच गये। पण्डितजी! सच कहता हूँ, उसी समय मुझे आपने वेश-भूषाके विषयमें जो कुछ कहा था, वे सब बातें याद आ गयीं और साथ ही लड़कपनमें पढ़ी हुई नीले सियारकी कथा भी याद आ गयी, जो अपना वेश त्यागकर राजाकी नकल करनेपर मारा गया था। इसके बाद घर आकर मैंने नाईको बुलाकर शिखा रखवायी तथा अपने कुलानुकूल स्नान-ध्यानपूर्वक त्रिपुण्ड्र चन्दन तथा वस्त्रादि धारण किये। अपने मित्रको भी अनुकूल बना लिया। तबसे सर्वत्र मेरा आदर हो रहा है। पहले तो मैं केवल अपने मित्रोंमें ही आदर पाता था। टोले-महल्लेके लोग मेरे वेशभूषाको देखकर बराबर मेरी खिल्ली उड़ाया करते थे। कोई साहब कहता तो कोई पाकिस्तानी बताता था। यद्यपि मैं पढ़ने-लिखनेमें खूब तेज था; किंतु वेशभूषा तथा उद्दण्डताके कारण लोगोंकी दृष्टिमें आदर पाने योग्य न था, किंतु अब मेरी वेशभूषाको देखकर लोग आदरपूर्वक मेरा

उदाहरण देते हैं कि 'देखते हो रामचन्द्रको; वह एम्० ए० में पढ़ता है, पर कैसा आदर्श सादा वेशभूषा, रहन-सहन और चाल-चलन है।' पण्डितजी! अपने देशोचित वेशभूषाका लाभ मुझे दिनोंदिन देखनेमें आ रहा है और मैं अपने साथी-मित्रोंको सदैव यही कहा करता हूँ कि 'अपने कुलोचित आचार-विचार तथा देशोचित वेशभूषाका भूलकर भी परित्याग न करो। मुजफ्फरपुरमें आपने कहा था, तभीसे मैंने लुंगी धारण करना छोड़ दिया था। उसीके फलस्वरूप मेरे प्राण बच गये और मैंने जरा भी मार नहीं खायी।' 'नहीं तो, न तो मैं बच सकता और न अपने मित्रको ही बचा सकता।' इन सब बातोंको सुनकर मैंने उस छात्रको बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि 'आपका अनुकरण यदि सभी छात्र करें तो देशका परम कल्याण हो।'

—पण्डित रामविलास मिश्र, कथावाचक

मांस खाना महापाप

हम पंजाबके रहनेवाले हैं। जब वहाँ गड़बड़ी हुई थी उस समय मैं छोटा-सा बच्चा था। हमारे घरमें मांसका सेवन होता और मुझे भी मांस खिलाया जाता था। मैं मांस खा तो लेता, पर उसके दो-तीन घंटे बाद ही मेरे दस्त होने लगते। घरवाले दवा दिलाते तो ठीक हो जाता। फिर मांस खाता तो फिर वैसा ही होता। १९४७ में जब हम यहाँ आये तो हमारी हालत कुछ और ही थी। दिन गुजरते गये और भगवान्‌की दयासे हमलोग कुछ काममें लग गये। फिर यहाँ भी वही मांसका सेवन होने लगा। एक दिन घरवालोंने मुझे कुछ पैसे देकर मांस लानेको भेजा। मैं कसाईके अड्डेपर पहुँचा तो वहाँ बहुत-से खरीददार खड़े थे। मांस थोड़ा था, अतः उस कसाईने कहा—'मैं और बकरा बनाऊँगा, तब आपको दूँगा।' हम सब वहाँ बैठ गये। तदनन्तर उसने दूसरे बकरेके साथ जो सलूक किया, वह बड़ा ही भयानक था। मैंने इससे पहले ऐसा बीभत्स दृश्य कभी देखा ही नहीं था। मुझसे वह दृश्य देखा नहीं गया। मेरा जी घबराने लगा और मैं वहाँसे तुरन्त भाग आया। मुझे कबीरजीका वह दोहा याद आ गया—

बकरी पाती खात है, वाकी तारें खाल।
जो बकरी को खात हैं, उनका कौन हवाल॥

मैंने घर लौटकर कह दिया कि उसके मांस खतम हो गया है। साथ ही मैंने घरवालोंसे यह भी कह दिया कि 'आपलोग अगर मांस खायँगे तो मैं घरसे चला जाता हूँ।' घरवालोंने कहा

कि 'हम मांस खाना छोड़ देंगे।' उस दिनसे आज १० वर्ष हो गये हैं, हमारे घरवालोंने कभी मांस खानेका इरादातक नहीं किया। मैं अपने सभी भाइयोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि वे सबसे पहले तुरंत मांस खाना छोड़ दें। मांसके लिये जो निर्दयतासे जीव मारे जाते हैं, वह बड़ा भारी पाप है।

—मदनलाल पिहोवा

सच्ची तीर्थयात्रा

रामनारायणजी साधारण व्यापारी थे। राजस्थानके छोटे शहरमें साधारण दूकान करते हैं। उनकी पत्नी बड़ी श्रद्धालु तथा धार्मिक प्रवृत्तिकी थी। उसका मन बहुत दिनोंसे चारों धामोंकी यात्रा करने तथा पुण्यस्थलोंपर यथासाध्य कुछ दान करनेका था। पर पतिकी आर्थिक स्थितिको देखकर वह कभी कुछ कहती नहीं थी। एक वर्ष उनकी दूकानमें पाँच-सात सौ रुपयेकी बचत हुई, तब उसने एक दिन पतिसे अपने मनकी बात कही। पतिने प्रसन्न होकर सहानुभूतिके साथ कहा—'सब मिलाकर लगभग दो हजारका खर्च है। अगले साल कुछ और कमाई हो जायगी तब चले चलेंगे। तुम्हारी यह इच्छा बहुत ही उत्तम है।' पत्नीने कहा—'लगभग चार सौ रुपये तो दस वर्षमें मैंने बचा-बटोरकर रखे हैं।' आखिर यह निश्चय हुआ कि होलीके बाद चलना है। अभी छः महीने हैं। 'इस बीच विवाहोंकी मौसिममें दूकानमें भी कुछ आमदनी हो जायगी।' पत्नी प्रसन्न हो गयी।

आखिर फागुनतक सब मिलाकर सोलह सौ रुपये इकट्ठे हुए। चैत कृष्ण २ का मुहूर्त निश्चित हो गया। रामनारायणने दूकानका काम कुछ समेट लिया; क्योंकि तीर्थयात्रामें पीछेसे दूकान बंद रखनी थी। इसी बीच एक दिन गाँवमें बाहरी बस्तीमें आग लग गयी। गरीबोंकी झोपड़ियाँ तो जली हीं, छोटी-सी गोशालाके घासकी वह बागर जल गयी, जो कल ही खुलनेवाली थी। गोशालाकी डेढ़ सौ गायोंके खाद्यकी भयानक समस्या आ गयी। यह समाचार रामनारायणजीकी धर्मभीरु करुणामयी पत्नीको

मिला। घासके अभावमें गौओंको भूखा रहना पड़ेगा—इस विचारसे उसका हृदय दहल गया! उसने अपने पति रामनारायणजीसे कहा कि अपनी तीर्थयात्रा या तो इस साल स्थगित कर दीजिये अथवा चारों धामोंकी न करके दो ही धामोंकी कीजिये और सोलह सौमेंसे आगे आठ सौ रुपयेका गायोंके लिये घास खरीद दीजिये। घासके अभावमें गायें भूखी रहेंगी। 'रामनारायणजीने समझाया कि वर्षोंसे तुम्हारी तीर्थयात्राकी इच्छा है और बड़ी कोर-कसरसे—बड़ी कठिनाईसे ये रुपये इकट्‌ठे हो गये हैं। फिर जुगाड़ होना कठिन है।' पर उसकी समझमें यह बात नहीं आयी। उसने कहा—'तीर्थयात्रा न होगी तो कोई बात नहीं। गाँवमें इस समय कोई घास खरीद दे, ऐसा आदमी दीखता नहीं है। खुली बागरका घास समाप्त हो गया था। कल ही यह बागर खुलनेवाली थी। मैंने पता लगाया है अमुक जाटके पास एक बागर घास है और किसीके पास है नहीं। वह किसीको बेच देगा तो फिर तो घास मिलना ही कठिन हो जायगा, अतएव उस घासको खरीदकर गोशालाको दे दीजिये। तीर्थयात्रामें अपनेको जो लाभ होता, वह न होगा तो कोई बात नहीं, हमारी गोमाता तो भूखों नहीं मरेगी।' रामनारायणजीने पत्नीकी बात मान ली, घास खरीद लिया गया। तीर्थयात्राका विचार एक बार स्थगित-सा हो गया। साढ़े आठ सौमें घास खरीदी गयी; साढ़े सात सौ रुपये बच रहे।

इसी बीचमें एक और चीज सामने आ गयी। रामनारायणजीकी पत्नीके पीहरके दूर रिश्तेमें एक भतीजी थी। बहुत गरीब घर था। उसकी एक लड़कीका विवाह होनेवाला था। रुपयोंकी व्यवस्था नहीं हो पायी थी, पर लड़कीका पिता प्रयत्न कर रहा था। वह कलकत्तेमें नौकरी करता था, वहाँ मालिकोंसे सहायता माँगने

गया था। वहाँ अकस्मात् हैजा होकर उसका देहान्त हो गया। रामनारायणजीकी पत्नीकी भतीजीपर वज्रपात हो गया। पतिकी मृत्यु हो गयी और इधर जवान लड़कीका विवाह रुकनेकी नौबत आ गयी। आगे डेढ़ साल विवाहका लग्न नहीं था। सयानी लड़की थी। यह समाचार जब रामनारायणजीकी पत्नीको मिला तो उसको बड़ी मर्म-पीड़ा हुई। उसने सोचा, तीर्थयात्राके लिये बचे हुए साढ़े सात सौ रुपयोंमें कन्याका विवाह हो जायगा। उसने रोते हुए अपने पतिके सामने विचार प्रकट किये। रामनारायणजीका हृदय भी बड़ा कोमल था। उन्होंने समर्थन किया। दो महीने बाद विवाहकी तिथि थी। रामनारायणजी और उनकी पत्नी दोनों उसके घर गये, उसे आश्वासन दिया और विवाहके मुहूर्तपर दोनोंने वहाँ जाकर अपने रुपयोंसे कन्याका विवाह कर दिया।

वहाँसे लौटनेपर एक दिन रामनारायणजीकी पत्नीको स्वप्नमें भगवान् नारायणके दर्शन हुए। नारायणने कहा—'तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल हो गयी। तुमने गायोंकी रक्षा और विधवा अबलाकी कन्याके विवाहमें रुपये लगा दिये। इससे तीर्थयात्राका फल तो तुम्हें मिल ही गया। मेरी प्रसन्नता भी तुमपर बरस रही है। तुम दोनों पति-पत्नीका लौकिक और पारमार्थिक भविष्य सुधर गया।' उसने जगकर पतिको सपना सुनाया। पतिको भी ठीक वही सपना आया था। दोनों गद्‌गद हो गये।

भगवान्‌की कृपासे उनका कारोबार बढ़ा, बड़ी सम्पत्ति हो गयी। तीर्थयात्रा भी सम्पन्न हुई, पर उनका जीवन फिर सदाचार, भगवद्भक्ति तथा गरीबोंकी सेवारूप भगवत्पूजामें ही बीता। सच्ची तीर्थयात्रा हो गयी। —सीताराम शर्मा

पतिकी अनुगामिनी वीरपत्नी

सन् १९४३में जापान और मित्र राष्ट्रोंमें होनेवाले युद्धका प्रसंग है। इस समय सिंगापुरसे एक बंगाली नेताने एक ज्वलन्त दीपक भेजा। मातृभूमि भारतके मुक्ति-फौजमें एक सैनिक था। इसने अपनी जापानी प्रियतमासे अन्तिम बार मिलकर कहा था— 'मातृभूमिका आवाहन है। आऊँगा तो विजयी बनकर, नहीं तो अगले जन्ममें मिलेंगे।'

और श्योनान (सिंगापुर)-में बैठी हुई यह जापानी रमणी अपने भारतीय सैनिक स्वामीकी बाट देखती हुई प्रतिदिन रेडियोसे समाचार सुनती। मणिपुर, तेलविस्ता, हाका, पालम, इम्फाल और कोहिमा........आजाद फौज एकके बाद एक स्थलको जीतती जा रही है।

इन समाचारोंसे पुलकित होती यह रमणी स्वयं भी आजाद फौजका एक अंग बनकर 'झाँसी रानी रेजिमेंट' में भरती हो गयी थी।

फिर तो विजयका पलड़ा पराजयमें पलट गया। समाचार मिलते हैं आजाद फौजके पीछे हटनेके, गिरफ्तारीके और मृत्युके। इतनेपर भी वह प्रतीक्षा करनेसे नहीं चुकी। एक दिन समाचार मिला—इम्फालके जंगलमें पड़ी आजाद फौज घेर ली गयी और उसके सैनिकोंको गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हींमें उसका पति भी था।

उस सैनिकने मृत्युको पसंद किया। अपनी राइफलको अपनी

ही छातीपर टेककर 'स्ट्रेगर' दबानेसे पहले ही वह पुकार उठा— 'जय हिंद!'

सुहागपर काली स्याही लगा देनेवाले इस समाचारसे जापानी रमणीपर क्या परिणाम हुआ होगा?

परंतु मातृभूमिके लिये आत्मार्पण कर देनेवाले अपने प्रियतमकी इस गौरवमयी मृत्युने जापानी रमणीकी आँखोंमें आँसू ला दिये, पर ये थे गौरवान्वित आँसू!

इसके बादकी वीरगाथाकी यह अन्तिम कड़ी भी प्रियतमके पीछे मृत्युके मार्गको पसंद करनेवाली इस रमणीकी मृत्युकथासे पूर्ण होती है। इस रमणीने पहलेसे संग्रह किये हुए जहरकी पुड़िया जलमें मिलायी और प्रियतमके मृत्युमार्गको वरण किया।

इस सैनिकका नाम था—श्रीएस० एन० कपूर। केसर भीगे कन्तको रणांगणमें भेजनेवाली इस जापानी युवतीका नाम नहीं मिलता, पर पृथ्वी-पटलपर संगृहीत मातृभूमिकी वीरगाथामें एक गुलाबके फूलकी तरह सुगन्ध फैलाता हुआ वह चमकता होगा.......चमकता रहेगा। (अखण्ड आनन्द)

—विष्णु पंड्या

मूक मानवता

अभी सुरक्षाकोषके लिये कार्यक्रम सम्पन्न करने मेरा पूना जाना हुआ था। वहाँ भाई नारायण सोलंकीने एक छोटी-सी, किंतु मानवताभरी बात वहाँके एक सज्जन व्यापारीकी सुनायी।

पूनामें दो वर्ष पहले जो बाढ़ आयी थी, उसमें बहुत-से घर डूब गये थे। एक गुजराती कुटुम्ब घर नष्ट हो जानेके कारण चौराहेपर आश्रय खोजता छोटे-से बच्चेके साथ खड़ा था।

वहाँसे बहुत लोग निकलते। सभी—'क्यों भाई, आप तो बड़ी मुसीबतमें आ पड़े? हमारे लायक कोई काम-काज हो तो कहना।' ऐसा कहकर मौखिक सहानुभूति दिखाकर आगे बढ़ जाते।

मोटरपर सवार होकर कांग्रेसके कार्यकर्ता आये। इन्होंने भी सहानुभूति और आश्वासनके दो शब्द कहकर अपना रास्ता पकड़ा।

किसीने यह विचार नहीं किया कि बिना घरबारका बना हुआ यह छोटे-से बच्चेवाला कुटुम्ब रातको कहाँ रहेगा? यों सुबहसे शामतक वह कुटुम्ब भूखा-प्यासा रास्तेके चौराहेपर खड़ा रहा। उधरसे जिसके साथ आँखकी भी जान-पहचान नहीं, ऐसे एक राजस्थानी सज्जन निकले। समाचार पूछकर सारी परिस्थितिका अनुमान कर लिया और वे उस कुटुम्बको अपने घर ले गये। कुछ भी कहे-सुने बिना ही उसके रहने तथा खाने-पीनेकी सारी व्यवस्था उन्होंने कर दी। सिलाईके कामके लिये एक मशीन भी

खरीद दी और उसे रोजी कमानेवाला भी बना दिया।

अपने साथ रखकर भाईकी तरह उनकी सँभाल रखी और वह भी पूरे एक वर्षतक। जब वे भाई अपने पैरोंपर खड़े रहने योग्य हो गये तब उन्होंने अलग घर ले लिया और उसमें रहनेको चले गये।

इस मूक मानवताका विज्ञापन उन सज्जनने कभी कहीं भी नहीं किया। न कभी पत्रोंमें नाम तथा फोटो छपवाये। परंतु जिनकी सेवा-सँभाल की, वे भाई तो उपकारवश इनकी गुणगान-गाथा गाया ही करते हैं। (अखण्ड आनन्द)

—मूलराज अंजारिया

सेवाका प्रकाश

'भाई! बगलमेंसे डॉक्टरको बुला दो न!' मेरे पड़ोसमें रहनेवाली राधा बहिनने आकर मुझसे कहा—'क्यों आज क्या है?' 'अरे! जल्दी जाओ, मेरी बहूके बहुत गड़बड़ है, आखिरी महीना चल रहा है। भाई बाहरगाँव गया है।' और मैं डॉक्टरको बुलाने दौड़ा। केसकी गम्भीरता समझी जाने योग्य थी।

रास्तेमें ही डॉक्टर प्रकाशका घर पड़ता था, परन्तु मुझे पहलेसे ही यह पता था कि डॉक्टर प्रकाश गाड़ीके बिना तो चलते ही नहीं। अतएव उनके घरके सामने आते ही मेरे पैर अटक गये। वैशाखकी दुपहरीका लगभग एक बजा होगा। दूरतक सूनसान सड़क, मानो धूप तथा तापके साथ दौड़ रही थी। ऐसे समयमें कोई गाड़ीवाला इधरसे क्यों निकलता? मैं चिन्तामें पड़ गया कि नजदीकमें और कोई डॉक्टर नहीं है और इन डॉक्टरके ले जानेमें यह कठिनता है! अब क्या किया जाय। एक-एक पलका हिसाब था। मैंने सकुचाते-सकुचाते उनके दरवाजेपर लगा हुआ बिजलीकी घंटीका बटन दबाया, मैं अन्दर गया। डॉक्टर झूलेपर बैठे आरामसे अखबार पढ़ रहे थे। मैंने बात बतायी—'अरे चलो, चलो, जल्दी चलो'—कहते हुए डॉक्टर तुरंत उठ खड़े हुए और नौकरसे उन्होंने पेटी ले चलनेको कहा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि डॉक्टर प्रकाशके उपचारसे उस बहिनके आराम हो गया।

जो डॉक्टर गाड़ीके बिना घरसे बाहर पैर नहीं रखते थे, वे इतनी जल्दी दुपहरीमें इतनी फुर्तीसे रोगीको देखने चल पड़े, इसमें मुझे कुछ नवीनता प्रतीत हुई; परंतु कुछ ही दिनों बाद

उनके बगलमें रहनेवाले एक भाईसे बातचीत होनेपर मुझे पता लगा कि डॉक्टरके इस परिवर्तनके पीछे कौन-सा बल काम कर रहा है।

कुछ समय पूर्व डॉक्टर अपनी पत्नीके साथ किसी बाहर-गाँवमें घूमकर मोटरके द्वारा घर लौट रहे थे। ईश्वरके विधानसे विचित्र संयोग उपस्थित हो गये। रास्तेमें ही मोटर रुक गयी और उनकी पत्नीके प्रसवका समय होनेके कारण पेटमें सख्त दर्द शुरू हो गया। कुशल डॉक्टर होनेपर भी बीच रास्तेमें वे क्या कर सकते थे? कोई साधन भी नहीं था। डॉक्टर सचमुच अड़चनमें पड़ गये। उन्हें स्पष्ट दिखायी दिया कि यदि उनकी पत्नीकी ठीक समयपर व्यवस्था न हुई तो कदाचित् मृत्यु हो जायगी। पीड़ासे कराहती पत्नीको मोटरमें ही छोड़कर वे नजदीकके गाँवकी ओर दौड़े। अच्छे नसीबसे एक बूढ़े वैद्यराज उनकी सहायताके लिये भागे और डॉक्टर-पत्नीको अपने घर लाकर वैद्यराजने उसके उपचारकी व्यवस्था की, वहीं उनके पुत्रका प्रसव हुआ।

जाते समय डॉक्टर उन वैद्यराजको पैसे देने लगे। वैद्यराजने डॉक्टरसे कहा—'भाई! यह मेरी ही बेटी है, यही मानकर मैंने सेवा की है, इसमें मैंने कोई एहसान नहीं किया। फिर अपना तो धंधा ही यही करनेका है। मेरी चार आनेकी दवासे तुम्हारी पत्नीके आराम हुआ है। तुम्हें पैसा ही देना है तो चार आने दे दो।' अन्तिम वाक्य कहकर वैद्यराजजी हँस पड़े। डॉक्टर प्रकाश शरमा गये और उसी दिनसे ये 'फारेन रिटर्न' डॉक्टर सच्चे अर्थमें 'डॉक्टर प्रकाश' बनकर हमारे गाँवमें अपनी सेवाका प्रकाश फैला रहे हैं। (अखण्ड आनन्द) —छबीलदास एच० मशरु

जैसा बीज वैसा फल

कुछ पुरानी बात है—बाबू कालीचरन उत्तरप्रदेशके एक अच्छे जमींदार थे, अच्छी आमदनी थी। वे गाँवमें न रहकर अक्सर शहरमें रहते थे। उन्होंने एक मकान बनवा लिया था, पर वह छोटा था। बाबू उसे बढ़ाना चाहते थे और खुली जमीनमें बगीचा लगवानेकी उनकी इच्छा थी। उनके बगलमें एक गरीब अहीरका घर था। घरके लोग मर गये थे। एक बूढ़ी स्त्री और उसका छोटा-सा पोता था लगभग बारह वर्षका। वह साग-सब्जी पैदा करके उससे अपना पेट पालती थी। कालीचरनने उसकी जमीनको लेना चाहा। बुढ़ियाको पता लगा तो एक दिन आकर वह कालीचरनके चरणोंपर गिर गयी और रोती हुई बोली—'सरकार! आपके पड़ोसमें मुझ गरीब बुढ़िया और अनाथ बच्चेको जहाँ सहायता मिलनी चाहिये, वहाँ आप हमारे पुरखोंकी यह छोटी-सी झोपड़ी भी उजाड़ देना चाहते हैं? यह मत कीजिये। आपको भगवान्‌ने लक्ष्मी दी है, आप चाहे जहाँ चाहे जितनी जमीन खरीद सकते हैं, मुझे तो यहीं पड़ी रहने दीजिये। मैं सदा आपको आशीर्वाद दूँगी।' कालीचरन बिगड़ उठे, कड़ककर बोले—'तुमलोग सीधी बातसे माननेवाले नहीं हो, थानेके सिपाही हाथ पकड़कर निकालेंगे तब मानोगे। तुम्हारी झोपड़ीकी रक्षा होगी और मेरा मकान नहीं बनेगा। यह हरगिज नहीं होगा। तुम्हें सौ-पचास रुपये चाहिये तो ले लो; नहीं तो रुपये भी नहीं मिलेंगे और जमीन तो छोड़नी ही पड़ेगी।' बुढ़ियाको बड़ी निराशा हुई और साथ ही बाप-दादोंकी जमीन जबरदस्ती छिन जानेकी बातसे उसे गुस्सा भी आ गया। उसने

कहा—'बाबूजी! अनीतिका फल अच्छा नहीं होता। भगवान् इसे नहीं सहेगा। तुम मेरी मड़ैया उजाड़ोगे तो तुम्हारा महल भी मटियामेट हो जायगा। मैं जाती हूँ। रोऊँगी भगवान्के सामने, जिनका कोमल हृदय है। तुम तो वज्रके बने स्वार्थी हो।' यह सुनकर बाबू कालीचरनका पारा बहुत चढ़ गया। उन्होंने कहा—'बड़ी भगवान्की भगत आयी है—मानो भगवान् तेरे हाथकी कठपुतली हैं, और होंगे भी तो क्या है। मैं भगवान्-वगवान् कुछ नहीं मानता। कल ही निकालकर छोड़ूँगा। देखूँगा तेरे भगवान् क्या करते हैं—चल निकल यहाँसे।' बुढ़िया उठी और यह कहती हुई—अरे, हिरनाकुसने भी यही कहा था, मैं भगवान्को नहीं मानता। उसकी क्या दशा हुई थी।……' चली गयी।

जमींदार समर्थ था। पुलिसके अधिकारी उसके हाथमें थे। उसने दूसरे ही दिन षड्यन्त्र करके रोती हुई बुढ़ियाको उसके नातीसहित घरसे निकलवा दिया और जमीनपर कब्जा कर लिया। बुढ़िया रोती-चिल्लाती बच्चेको लेकर चली गयी। कुछ लोगोंने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कालीचरनकी करतूतको बुरा भी बताया। पर इससे क्या होता था।

कालीचरनका मकान बड़ा बन गया, बगीचा भी लग गया। पर तीसरे ही वर्ष जोरका प्लेग फैला और कालीचरनका जवान लड़का और उसकी माता सहसा उसके शिकार हो गये। इन दोनोंने भी कालीचरनको बहुत उकसाया था। साथ ही, कालीचरनपर एक पुराने मामलेमें डिगरी होकर उसके मकानपर कुर्की आ गयी। सारा ही दृश्य बदल गया। कालीचरन स्त्री-पुत्र-मकान सब खोकर राहका कंगाल हो गया। 'इस हाथ दे उस हाथ ले।' जैसा बीज वैसा ही फल। —शिवदीन मिसिर

सद्व्यवहारका शुभ परिणाम

मानमल और भैंरूदान मामा–फूआके सम्बन्धसे भाई थे। मानमल बहुत ही भोला था, पर उसके पास रुपये थे, भैंरूदान काममें बहुत होशियार था। दोनोंने हिस्सेदारीमें काम कर रखा था। मानमलकी पूँजी लगी थी और भैंरूदान काम सँभालते थे। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। मानमलकी पूँजीकी ईमानदारीसे रक्षा करता हुआ भैंरूदान बड़ी निपुणतासे व्यापार चला रहा था; पर सारा काम वही सँभालता था, इससे दूकानमें उसीकी पूछ थी। मानमलका लड़का सोहनलाल इससे जलता था। वह भैंरूदानका मान नहीं सह सकता और उसे बदनाम करना चाहता था। भैंरूदानको इसका पता नहीं था। वह सोहनलालसे बच्चेकी तरह बरतता और उससे काममें सहायता लिया करता था। सोहनलालने एक दिन रोकड़से नौ सौ रुपये चुरा लिया और रुपये न मिलनेपर जब पूछताछ हुई तब मानमलसे उसने कह दिया कि 'मैंने देखा—चाचाजी रुपये निकालकर अपने घर ले गये थे।' मानमल भोले स्वभावका था। उसने इस बातपर विश्वास करके भैंरूदानको उलाहना दे दिया। और तो कुछ कहनेका उसमें साहस ही नहीं था। भैंरूदानको दुःख तो हुआ, पर उसने न तो काम छोड़ा और न क्रोध ही किया। बुद्धिमान् था, सारा रहस्य उसकी समझमें आ गया। सोहनलालको इससे निराशा हुई, पर वह कुछ बोल नहीं सका। भैंरूदानने किसी तरह पता लगा लिया कि सोहनलालने रुपये लेकर अपनी पेटीमें रखे हैं। उस मूर्खने

नौकरसे अपनी बहादुरी बता दी थी, उसीसे पता लग गया। एक दिन सोहनलाल बाहर गया हुआ था, पीछेसे भैंरूदानने मानमलसे कहा—'तुम बच्चेपर नाराज न होना, उसने नादानी की है, मुझे पता लग गया है, रुपये सोहनलालने निकालकर अपनी पेटीमें रखे हैं!' मानमलने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता।' भैंरूदानने कहा—'चलो, उसकी पेटी खोलकर देख लो।' मानमल सरलहृदय था। भैंरूदानको साथ ले जाकर पेटी खोली, उसमें नौ सौ रुपये मिल गये। सोहनलालके आनेपर मानमलने उसे डाँटकर पूछा तो उसने स्वीकार कर लिया और वह रोने लगा। मानमल उसपर बहुत नाराज था। भैंरूदानने रोते हुए सोहनलालको गोदमें लेकर उसको प्यारसे समझाया और आश्वासन दिया। सोहनलालके हृदयमें कृतज्ञता पैदा हो गयी। सीधा तो था ही सामयिक विकार आ गया था। भैंरूदान तबसे सोहनलालके साथ विशेष प्रेम तथा आदरका बर्ताव करने लगा। भैंरूदानके सद्व्यवहारसे सोहनलालके मनका सारा विकार दूर हो गया और वह उसका अनुगामी तथा आज्ञाकारी बन गया। यह सद्व्यवहारका फल है—***'मंद करत जो करइ भलाई'***।

—चम्पालाल

रामरक्षास्तोत्रसे लाभ

मैं 'कल्याण'का पाठक इधर कई वर्षोंसे रहा हूँ। पर १९६१ में एम्० ए० की परीक्षामें संलग्न रहनेसे 'कल्याण' नहीं पढ़ सका। फलतः अनेक धार्मिक कृत्योंमें भी अरुचि-सी रही। भगवान्‌से मानो यह देखा नहीं गया। परीक्षाके पूर्व विषमज्वर हो गया। मैंने आर्त-पुकार मचायी। ठीक परीक्षाके पाँच दिन पूर्व ज्वरमुक्त हुआ। परीक्षा दी। परीक्षा-फल निकलने नहीं पाया था कि एक षड्यन्त्र हुआ और मुझे अपना पद त्याग करना पड़ा। पर यहीं मैंने ससम्मान पद ग्रहण किया। इस उलट-फेरसे फिर पूजा-पाठसे विरक्ति हुई। बस, स्वास्थ्य गिरने लगा। मन चिन्तित रहने लगा। उसी समय प्रसूतिरोगसे मेरे घरमें जच्चा-बच्चा दोनोंका देहान्त हो गया। परिवारपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। घरमें १० वर्षसे नीचेकी तीन बच्चियोंको देखनेवाली कोई नहीं रही। हम दोनों बाप-बेटे अन्यत्र शिक्षकका काम कर रहे थे। उसमें भी षड्यन्त्र शुरू हुआ। अब तो मैं दुस्सह चिन्ताग्रस्त रहने लगा। घर और स्कूल दोनों जगह चिन्ताका सागर लहरा रहा था। स्वयं दुःखको भी हमारा दुःख देखकर कलेजा मुँहको आता था। मैंने समझा, नाश निकट है। इसी समय 'कल्याण'का वह अंक मिला, जिसमें 'रामरक्षास्तोत्र'का वर्णन था। उसे पढ़कर भगवत्कृपावश सिद्ध करनेका निश्चय किया। उसी नवरात्रमें उसे सिद्ध किया। तबसे विचित्र चमत्कार मालूम पड़ा। आशाका संचार हुआ। स्वास्थ्य सुधर गया। मन प्रफुल्ल रहने लगा। स्कूलमें भी षड्यन्त्र असफल हो गया। मेरे पुत्रने यह चमत्कार

देखकर पाठ-मात्र शुरू किया। उससे उसमें भी उत्साहका संचार हुआ। तबसे मेरे सम्पर्कमें आनेवाले सभी मित्रोंको मैं इस चिन्तामणिका परिचय देता रहा हूँ। सबने इसका कल्याणप्रद फल बताया है। मेरे विचारमें चिन्ताग्रस्तोंके लिये इससे बढ़कर कोई चिन्तामणि है ही नहीं। मैंने एक बार इसका प्रयोग अपने एक सम्बन्धीके दुर्घटनाग्रस्त होनेपर भी किया। उनके नाकपर जोरकी चोट लगी थी। इससे उनके प्राण विकल थे। चारों ओर लोग जमा थे। वे वृद्धा ठहरीं। कफ भी और खून भी। श्वास अवरुद्ध होने लगा। मैंने स्नान करके उन्हें अपनी गोदमें लिया और कानमें ग्यारह बार श्रीरामरक्षास्तोत्रका बहुत जोरसे पाठ सुनाया। सातवीं बारमें वे मेरी गोदसे उतर गयीं और ग्यारहवाँ पाठ सुनते-सुनते एकदम उठ खड़ी हुईं। बोलीं कि 'अब मैं स्नान करके पूजा करूँगी।' इस चमत्कारको देखकर मैं 'कल्याण' पाठकोंके लिये इसे लिखनेका लोभ संवरण नहीं कर सका। यों तो इन बातोंका प्रसार मैं पसंद नहीं करता। पर जिस 'कल्याण'से मेरा कल्याण हुआ है, उससे दूसरोंका भी कल्याण हो—उसी मंगल-कामनासे यह लिखा है।*

—विन्देश्वरीप्रसाद सिंह, एम्० ए०, प्रधानाध्यापक, श्रीगंगा उच्च विद्यालय, मैनाग्राम, जिला सहर्षा

---

* रामरक्षास्तोत्रके प्रयोगसे लाभ होनेके और भी पत्र मिले थे। एक सज्जन लिखते हैं—वे ११ महीनेसे बीमार थे और तरह-तरहका इलाज करवाकर निराश हो चुके थे। रामरक्षास्तोत्रका पाठ करनेसे वे रोगमुक्त हो गये। एक बच्चा बहुत देरतक विषधर सर्पकी लपेटमें रहकर बच गया आदि। —सम्पादक

खूनी बवासीर (रक्तार्श)-की दवा

रसौत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला—दोनोंको पानीमें खूब महीन पीसकर आठ-आठ आने भरकी गोली बना लें। एक गोली प्रातःकाल और एक संध्याको ठण्डे जलके साथ खिला दें। यह दो दिनोंकी दवा है। इसीसे खून बंद हो जायगा। न हो तो दो दिन इसी प्रकार और दे दें। गुड़, लाल मिर्च, खटाई, तेल कतई न खायें। यह भी हजारों रोगियोंपर अनुभूत है!

—वंशीधर अग्रवाल, पयागपुर (बहराइच)

रेखमें मेख

वर्षों पहलेकी बात है, सैयद रहमत अली शाह झंग जिले (वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान)-के एक छोटे-से ग्राममें सम्पन्न जमींदार थे। जमींदारके पास बहुत-सी उपजाऊ धरती थी। गाय, भैंस, बैल, घोड़े सभी कुछ थे। किंतु उनके इकलौते पुत्र रशीद अलीके कोई संतान न थी। घरमें कोई बच्चा न होनेके कारण बड़ी उदासी छायी रहती थी। पुत्रवधू सलमाको नगरमें लेकर गये और वहाँ बड़ी डॉक्टरनीको दिखाया, किंतु कोई रोग उसकी समझमें न आया। सासने बहुत-से ताबीज आदि करवाये, किंतु सभी निष्फल हुए।

गाँवसे एक मील दूर एक मुसलमान फकीर 'साईं बाबा' एक पक्की कुटियामें रहते थे। इनका सारा समय ईश्वरके स्मरण-चिन्तनमें बीतता था। आसपासके गाँवमें लोग उनको खुदा रसीदह अर्थात् पहुँचा हुआ सन्त मानते थे और उनकी सेवा-शुश्रूषासे अपने-आपको कृतकृत्य समझते थे। सलमाने भी साईं बाबाकी प्रशंसा सुनी थी। जब संतान प्राप्ति करनेमें चारों ओरसे निराशा हो गयी तो उसने साईं बाबाका द्वार खटखटानेकी सोची। उसने अपनी साससे आज्ञा लेकर सप्ताहमें दो बार साईं बाबाके लिये बढ़िया जरदा (मीठे चावल) ले जाना आरम्भ कर दिया। यह क्रम कई मासतक चलता रहा। बाबा स्त्रियोंसे बहुत कम बात करते थे, इसलिये सलमा चुपचाप जरदा पेश करके चली आती थी।

एक दिन साईं बाबाके हृदयमें इस जरदा लानेवाली महिलापर कृपा करनेकी प्रेरणा हुई।

साईं बाबाने कहा—'बेटी! कई महीनोंसे तुम हमारी खिदमत (सेवा) कर रही हो। कहो तुम्हें क्या चाहिये?'

सलमाने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—'बाबा! मेरे संतान नहीं है। मैं एक बालक चाहती हूँ, जिससे मेरे अँधेरे घरमें भी उजाला हो जाय।'

साईं बाबाने कहा—'तुम्हारे लिये दुआ माँगूँगा। जो खुदाबन्द ताला हुक्म देंगे, तुम्हें बता दूँगा।'

तीसरे दिन जब सलमा जरदा लेकर गयी तो साईं बाबाने कहा—'बेटी! मुझे अफसोस है कि तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं होगी; क्योंकि अल्लाहतालाने फरमाया है कि तुम्हारे भाग्यमें संतान नहीं है। इसलिये तुम जरदा मत लाया करो और जो लायी हो वह वापस ले जाओ।'

साईं बाबाके निराशाजनक वचनोंसे सलमाका हृदय टूट गया। वह कुछ समयके लिये खड़ी-की-खड़ी रह गयी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। फिर उसने जरदेकी थाली उठा ली तथा आँसू झरती, ठंडी आहें भरती, मुख लटकाये धीरे-धीरे अपने घरकी ओर चली।

कुछ समयसे एक हिंदू साधु भी घूमते-घामते उस इलाकेमें आ गये थे। उनको प्रायः लोग विक्षिप्त समझते थे; क्योंकि वे घंटों चुपचाप ऐसे बैठे रहते जैसे न कुछ देखते हों और न कुछ सुनते हों। यदि कोई व्यक्ति उनसे बात करना चाहता तो वे गाली बकने लगते। फिर भी न मानता तो ईंट, मिट्टी फेंकने लग जाते। कभी बिना कारण हँसते रहते और कभी जोरसे रोने-चिल्लाने लग जाते। जब भूख सताती तो हर किसीके घरसे रोटी माँग खाते। घूमते-घामते जहाँ रात पड़ जाती, वहीं बैठ जाते। किसीने उनको सोते नहीं देखा था। लोग उनको 'पागल बाबा' कहने लगे थे।

आज पागल बाबा सारी रात रावी नदीके किनारे बैठे रहे। उस समय दोपहरके दो बजे होंगे, जब उन्होंने सलमाको थाली लिये रोते हुए जाते देखा।

बाबाने कहा—'बेटी! तेरे पास अगर कुछ खानेको हो तो मुझे दे दे। मुझे बड़ी भूख लगी है।'

सलमा पहले तो बाबाके समीप जानेसे डरी कि कहीं ईंट न मार दें, किंतु फिर उस समय बाबाकी बालकके समान सौम्य आकृति देखकर वह पास आ गयी। धरतीपर सिर रखकर प्रणाम किया और चावलोंकी थाली बाबाके सामने रख दी। किशमिश, बादाम तथा गरीसे सुसज्जित बढ़िया चावल देखकर बाबा खिलखिलाकर हँसने लगे। तत्पश्चात् आनन्दसे भोग लगाया। फिर तृप्त होकर निराशाकी मूर्ति सलमासे बोले—'तू रोती क्यों है?' उसने सभी बातें और उस दिनकी साईं बाबासे हुई परम निराशाजनक बातचीत कह सुनायी और फिर रोने लगी।

पागल बाबा बोले—'तू एक बालकके लिये रोती है, मैं तुझे दो देता हूँ। प्रसन्न होकर अपने घर चली जा।'

पहले तो सलमाको पागल बाबाके कहनेका विश्वास न हुआ, किंतु जब गर्भके लक्षण प्रत्यक्ष हो गये, तब उसे बड़ा आनन्द हुआ और उसका हृदय पागल बाबाके प्रति कृतज्ञतासे भर गया। समय पूरा होनेपर उसने दो यमज बालकोंको जन्म दिया। पागल बाबा तबतक जाने कहाँ चले गये थे, इसलिये सलमा अपनी कृतज्ञता प्रकट न कर सकी।

सभी जानते थे कि साईं बाबा कोई मक्कार, फरेबी नहीं हैं, जो किसी लालचसे लोगोंको ठगते हों। जमींदारके पौत्रोंके विषयमें तो कोई ठगने-ठगानेकी बात ही नहीं थी; क्योंकि उन्होंने यही कहा था कि सलमाके भाग्यमें संतान नहीं है, फिर

यह पागलके कहनेसे कैसे हो गयी? इस बातका विचार सैयद रहमत अलीके घरमें कई बार हुआ, किंतु बात समझमें नहीं आयी।

जब बालक दो-तीन मासके हो गये तो सलमाने साईं बाबाके पास जाकर ही इस रहस्यको प्रकट करानेका निश्चय किया। उसने फिर जरदा बनाया और अपनी ननदको साथ लेकर साईं बाबाके पास चली। एक बालकको उसकी ननदने उठा लिया; दूसरे बालकको तथा थालीको सलमाने स्वयं उठाया और वे दोनों साईं बाबाके पास चल दीं। जरदा समर्पण करके सलमाने दोनों बच्चोंको साईं बाबाके चरणोंमें डाल दिया। साईं बाबा यह देखकर बड़े विस्मित हुए। बालकोंको दीर्घायु होनेका आशीर्वाद देकर उन्होंने पूछा कि 'यह सब कैसे हुआ?' सलमाने सारी घटना सविस्तर वर्णन की।

साईं बाबाने कहा—'मैंने जो कुछ पहले कहा था, स्वयं नहीं कहा था; किंतु ईश्वरका अपना आदेश था। ईश्वरीय आदेश कैसे अन्यथा हो गया? यह मैं नहीं समझ सकता। ईश्वर ही बतानेकी कृपा करें, तब समझमें आवे।'

साईं बाबाने सलमाको फिर आनेको कहा और वह चली गयी। दो-चार दिनों बाद सलमा फिर साईं बाबाके पास गयी।

साईं बाबाने सबसे पहले यही कहा—"वह पागल कहाँ है? मुझे बताओ, मैं उसे सिजदह (दण्डवत्-प्रणाम) करूँगा। अल्लाह-तालाने फरमाया था कि 'वह पागल मेरा अपना प्रेमास्पद है। मैं उसको प्रेम करता हूँ। प्रेमास्पदकी बात कौन टाल सकता है?' उसने मेरे लिये इतना बड़ा त्याग किया है कि जो अवर्णनीय है।"

बोलो भक्त और उनके भक्तवत्सल भगवान्‌की जय!

—श्रीनिरंजनदास धीर

पापका प्रायश्चित्त

एक गाँवमें दो भाई थे। मदनमोहन बड़ेका नाम था और गंगाप्रसाद छोटेका। दोनोंकी स्त्रियोंमें कुछ अनबन रहने लगी। भाइयोंने अलग-अलग हो जानेका विचार किया। बड़े भाईकी स्त्रीका स्वभाव खराब था। उसीके कारण झगड़ा शुरू हुआ था। एक दिन मौका पाकर बुरी नीयतसे वह गंगाप्रसादकी जेबमेंसे बारह सौके नोट निकालकर ले गयी। उसपर किसीका कोई संदेह था ही नहीं। समझ लिया गया रास्तेमें कहीं गिर गये होंगे।

भाग्यकी बात, उसने उन नोटोंको अपने छोटे बच्चेके खिलौनोंकी पिटारीमें ले जाकर रख दिया। वहाँसे दो-तीन दिनोंतक उन्हें हटानेका अवसर नहीं मिला। एक दिन सबेरे वह रसोईमें थी। उसका छोटा बच्चा दूसरे बच्चोंके साथ खेल रहा था। उसने अपने साथी छोटे बच्चोंके साथ पिटारी खोली और खिलौने निकालकर सब खेलने लगे। जाड़ेके दिन थे। कमरेमें अँगीठी जल रही थी। आग कुछ बुझने लगी तो बच्चेके मनमें आग तेज करनेकी आयी। वह कागज ढूँढ़ने लगा—कागज मिल जायँ तो अँगीठीमें डाल दे। भाग्यसे माताकी पेटी खुली थी। उसने खोलकर देखा—बहुत-से कागज दिखायी दिये। झटसे उठाकर अँगीठीमें डाल दिये। पेटी ज्यों-की-त्यों बंद कर दी। एक बार धुआँ निकला, फिर भकसे कागज जल उठे। पर तुरंत ही बुझ गये, तब बच्चा फिर कागजोंकी खोजमें लगा। खिलौनोंकी पिटारीमें बारह सौके नोट थे। बच्चोंकी दृष्टिमें तो कागज ही थे। उठाकर उन्हें भी अँगीठीमें डाल दिया और वे भी खाक हो गये। इतनेमें किसी कामसे माँ आयी। अँगीठीके आस-पास बच्चोंको देखकर कहा—'यहाँ सब क्या करते

हो? जल जाओगे।' उसका बच्चा तो डर गया। सोचा, मैंने कागज जला दिये—माँ खीझेगी। पर दूसरे एक बच्चेने कह दिया कि 'आग बुझी जा रही थी। इससे तुम्हारे मुन्नाने पिटारीमेंसे कागज निकालकर इसमें डाले तब आग जली। अब फिर बुझ गयी। वह अब और कागज ढूँढ़ रहा है।' यह सुनते ही उसे नोटोंकी याद आयी। पिटारीमें देखा तो नोट नहीं थे। उसके होश हवा हो गये। आँखोंसे आँसू बहने लगे। यह देखकर एक बच्चेने सरलतासे कहा—'अरी, तुम रोती क्यों हो? आग बहुत अच्छी जली थी। ये कागज तो पीछे डाले, पहले तो उस बकसामेंसे निकालकर डाले थे।' उसने सुनते ही हाय मारकर कहा—'क्या वे भी जला दिये? कल ही तीन हजारके नोट मेरे मैकेसे आये थे, माँने भेजे थे और उन्होंने लाकर मुझे रखनेको दिये थे।' वह 'हाय तोबा' मचाने लगी। बच्चे तब सहमे रह गये। घरके लोग इकट्ठे हो गये। उसने कहा—'मैं बड़ी पापिन हूँ। उस दिन मैं ही देवरकी जेबमेंसे बारह सौके नोट निकालकर लायी थी। मेरे पापका फल मुझे हाथोंहाथ मिल गया। उन बारह सौके साथ मेरे तीन हजारके नोट भी जल गये। ढाई गुना फल हाथोंहाथ प्राप्त हो गया।' वह इतना कहकर बेहोश हो गयी। देवरने जल छिड़ककर चेत कराया। पर वह अपने पापके पश्चात्तापकी और माँके पाससे आये हुए तीन हजारके नोटोंके जल जानेकी मानसिक आगसे जल रही थी। देवर गंगाप्रसादने उसे धीरज दी। पश्चात्तापकी अग्निसे शुद्ध होकर उसका मन बदल गया। नोट तो जले, पर घरमें प्रेम बहुत बढ़ गया। तबसे फिर कभी अलग होनेकी चर्चा ही नहीं उठी।

—हरिनारायण शर्मा

कृतज्ञता—ईमानदारी और कृतघ्नता—बेईमानी

गणेशदासजी राजस्थानके निवासी थे। असमके एक गाँवमें उनकी कपड़े, गल्ले, किरानेकी दूकान थी। काम कुछ चलने लगा। तब वे देशसे रामकुमार नामक अपने एक गरीब सम्बन्धीको मुनीमके रूपमें ले गये। उसको पाला-पोसा, काम सिखाया, काम सौंपा। इन्हींके साथ एक साँवलराम नामक गरीब ब्राह्मण भी गये। गणेशदासजीने अपने छोटे-से भगवान्‌के मन्दिर (ठाकुरवाड़ी)-में साँवलरामको पुजारी नियुक्त कर दिया। इसके सिवा बरनी, पाठ-पूजा आदि करके भी वे कुछ कमाने लगे। पर साँवलराम रहते थे गणेशदासजीके गोलेमें ही तथा वहीं खाते भी थे। कुछ समय बाद साँवलरामने अपनी पत्नीको भी बुला लिया। गाँवमें राजस्थानियोंके कई परिवार रहते थे। नयी बहीका पूजन, पूजापाठ, व्रत-त्योहार, रामनवमी-दीवाली आदिके काम रहते थे ही। वहाँ और कोई पण्डित था नहीं। सभी कामोंमें साँवलरामजीकी माँग रहती। वे अच्छी तरह कमाने-खाने लगे। रुपये भी जुड़ने लगे। जब वे गणेशदासजीके साथ आये थे तब भी, और उनकी स्त्रीके आनेके बहुत दिनों बादतक भी उनकी हालत बहुत गरीबीकी ही थी। गणेशदासजीकी पत्नी और गणेशदासजी उनकी हर तरहसे सहायता करते। लड़कीका विवाह भी करा दिया था उन्होंने ही। इधर पं० साँवलरामजी भी गणेशदासजीके लिये अपना जीवन देनेको तैयार रहते।

दूकानका सारा काम अब रामकुमार सँभालने लगा। उसका परिवार भी वहाँ आ गया। कुछ वर्षोंके बाद रामकुमारकी नीयत बिगड़ी। उसने दूकानमें चोरी आरम्भ की। दूकानका सामान अपने घर ले जाता; माल बेचकर रुपये अपनी जेबमें डाल लेता। धीरे-धीरे इस बातका साँवलरामजीको पता लग गया। उन्होंने रामकुमारको समझाकर कहा कि 'यों चोरी तथा नमकहरामी करना ठीक नहीं, इससे बड़ा पाप होता है।' पर पैसेका लोभ मनुष्यके विवेकको नष्ट कर देता है। चोर धर्मकी बात क्यों सुनने लगा। रामकुमारने उनकी बात नहीं सुनी, बल्कि साँवलरामको भी कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया। साँवलराम ईमानदार थे, सच्चे थे। उन्होंने उस प्रस्तावको ठुकरा ही नहीं दिया, रामकुमारको समझाया भी। पर वह नहीं माना। उलटे साँवलरामसे वैर मानने लगा। और गणेशदासजीसे साँवलरामजीके चरित्र, आचरण, व्यवहार आदिके सम्बन्धमें झूठी-झूठी शिकायतें—'यह व्यभिचारी है, चोर है, मैं समझाता हूँ तो मुझसे बुरा मानता है।' आदि कह-कहकर उनका मन खराब करने लगा।

रामकुमारकी चोरी खुले हाथों चलने लगी। बेईमानी बेहद बढ़ती गयी। वह बड़ी तेजीसे अपना घर बनाने लगा। गणेशदासजीको हानिका उसके मनमें कोई विचार ही नहीं रहा। साँवलरामजीसे यह नहीं सहा गया। उन्होंने गणेशदासजीको एक दिन सब बातें संक्षेपमें कहीं। गणेशदासजीका मन पहलेसे खराब तो था, पर उन्होंने रामकुमारसे इसके बाबत पूछा। रामकुमारने साँवलरामजीके सम्बन्धमें जली-कटी बातें सुनाकर उनसे कहा—'मैंने तो पहले ही कहा था कि साँवलराम अब पहले-जैसा गरीब ब्राह्मण नहीं रहा है—यह आपका बुरा चाहता और

बुरा ही करता है। मुझसे वैर मानता है, इसीसे मेरे बारेमें झूठी बातें बना-बनाकर उसने आपसे कही हैं।' यों कहकर वह झूठ-मूठ रोने लगा और अपना विश्वास जमानेके लिये गणेशदासजीके पैर पकड़कर बोला—'आप मालिक हैं, जँचे सो कीजिये।' पर मुझसे आपका अनिष्ट देखा नहीं जाता, इसीसे रोकर आपसे यह कहता हूँ कि आप अपना भला चाहते हैं तो साँवलरामको तुरंत निकाल देना चाहिये।

सेठ गणेशदासपर रामकुमारके रोनेका बड़ा असर पड़ा। उन्होंने साँवलरामजीको बुलाकर उनका तिरस्कार किया और घरसे निकल जानेको कह दिया। उनकी पत्नी चन्दाने रोका-टोका भी, पर उस समय गणेशदासजी क्रोधमें थे, बुद्धि मारी गयी थी, इससे वे नहीं माने। साँवलराम अपना सामान तथा रोती हुई पत्नीको लेकर चल दिये और एक दूसरे दूकानदार हरनारायणके घर जाकर रह गये। वह इनसे बहुत प्रेम करता था।

× × ×

कुछ समय बाद पासा पलटा। रामकुमारकी बेईमानी तथा अन्यायाचरणसे गणेशदासजीकी दूकानका बुरा हाल हो गया। एक दूसरे व्यापारी बजरंगलालसे, जो गुंडा स्वभावका था और गणेशदाससे द्वेष रखता था, साजिश करके रामकुमारने गणेशदासकी फर्मके नामसे तीन साल पहलेकी तारीखमें पंद्रह हजारका उधार रुपये लेनेका हैंडनोट लिख दिया—कह दिया कि 'डिगरी होनेपर रुपये वसूल होंगे तब आधे-आधे बाँट लिये जायँगे।' नालिश हो गयी। रामकुमारको सब प्रकारकी सही करनेका हक था। उसने साक्षी दे दी कि 'रुपये फर्मके कामसे लिये गये थे, मेरे हस्ताक्षर हैं।' हाकिमको भी किसी

तरह पक्षमें कर लिया गया। डिगरी हो गयी। मालताल तो कुछ था नहीं, जमीन-गोला था और कुछ गहना था। उसपर कुर्कीकी नोटिस आ गयी। गाँवभरमें तरह-तरहकी पक्ष-विपक्षकी चर्चा फैल गयी। रामकुमारकी नीचता सीमा पार कर गयी।

कुर्की आनेवाली थी, उसके पहले दिन रात्रिको साँवलरामजीकी स्त्री—गोदावरी ब्राह्मणी चुपकेसे गणेशदासजीकी स्त्री चन्दाबाईके पास पहुँची और पैर पकड़कर रोने लगी। उस समय गणेशदास कुछ व्यवस्था करनेके लिये बाहर गये हुए थे। वे कई दिनोंसे प्रयत्न कर रहे थे कि कहींसे जमीन-गोलेपर कुछ रुपये मिल जायँ तो इज्जत बचे। पर कहीं व्यवस्था हो नहीं पा रही थी। निराश और बड़े दुःखी थे। कभी-कभी दोनों स्त्री-पुरुष आत्महत्याकी बात सोचा करते थे। कहा करते हे प्रभो!

'साँई इतनी बीनती दोनूँ भेला रख।
लाज रखे तो जीव रख लज बिन जीव न रख॥

आज यह आखिरी प्रयास था। सफलता न होगी तो फिर कुछ-न-कुछ किया ही जायगा, यही कहकर वे गये थे।

पण्डितानी गोदावरीको पैर पकड़े रोती देखकर दुखिया चन्दा भी रो पड़ी। धीरजका बाँध टूट गया। इस दुःखके समय गोदावरी आयी तो है, इसी बातपर चन्दाका स्नेह उमड़ आया। वह बोल न सकी। गोदावरीने धीरेसे बगलमेंसे एक पोटली निकाली—उसमें सोनेका छः-सात हजारका गहना था और दस हजारके नोट थे। दस-पंद्रह वर्षकी साँवलरामकी ब्राह्मण-वृत्तिकी सारी कमाई थी। उसने रखकर हाथ जोड़कर कहा—'मैं कंगालिनी आपका कोई उपकार करने नहीं आयी। आप मेरी

माँ हैं, मेरे पतिकी माँ हैं। आपके ही स्नेहसे हम लोगोंका जीवन बना है, हमारे रक्तके कण-कणमें आपका अन्न भरा है। यह जो कुछ है, सब आपका ही है। इसे आप स्वीकार करें।' यों भाँति-भाँतिसे गोदावरी बड़ी नम्रतासे रो-रोकर चन्दासे प्रार्थना कर रही थी और चन्दा उसका उपकार मानती हुई लेनेसे इनकार कर रही थी। इसी बीच गणेशदासजी खाली हाथ उदास लौटे। वे दूर खड़े होकर आँसू पोंछने लगे और सुनने लगे इनकी बातें। गोदावरी कह रही थी—'माँजी! यह सारी रामकुमारकी करतूत है, उसीने हमारे भोले सेठजीको बहकाकर आपके बेटे (साँवलराम)-को घरसे निकलवाया, उसने बेईमानीसे अपना घर बनाया और उसीने षड्यन्त्र करके यह विपत्ति बुलवायी। पर आप उसपर क्षमा करें और मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करें।' सुनकर गणेशदास दंग रह गये। अपनी भूलपर पश्चात्तापकी आग जल उठी उनके मनमें। वे तुरंत सामने आ गये। श्रीसाँवलरामजीको बुलाया गया। सारा भेद खुला। सबेरे रुपये कोर्टमें भरकर वकीलोंकी सलाहसे बजरंगलाल और रामकुमारपर फौजदारी मामला दायर कर दिया और मामलेके फैसला न होनेतकके लिये कोर्टमें दरखास्त देकर बजरंगलालको रुपये न देनेका आदेश प्राप्त कर लिया। कोर्टमें केस चलनेपर सच्ची बातें सामने आ गयीं। बजरंगलाल और रामकुमारको कड़ी कैदकी सजा हुई। रुपये गणेशदासको वापस मिल गये। सबकी सहानुभूति बढ़ गयी। दूकान फिर चल निकली। गणेशदास सुखी हो गये। साँवलराम और उनकी पत्नी फिर घरमें आ गये। उनके प्रति गणेशदासका जीवन कृतज्ञतासे भर गया।

ये दो सच्चे मित्र हैं। एक—कृतज्ञता, ईमानदारी और भलाईका, दैवीभावका; दूसरा—कृतघ्नता, बेईमानी और बुराईका, आसुरी सम्पत्तिका।

सोचिये और जीवनमें दैवी सम्पत्तिके चित्रको चरित्ररूपसे उतारिये।

—बालमुकुन्द सोनी

बड़ोंका आशीर्वाद

सर चिन्तामणि देशमुख भारतके माने हुए अर्थशास्त्री थे। ब्रिटिश राज्यकालमें वे रिजर्व बैंकके गवर्नर थे। इनसे पहले अर्थविभागके इतने ऊँचे पदपर किसी भी भारतीयकी नियुक्ति नहीं हुई थी। देश स्वतन्त्र होनेपर श्रीजान मथाई और सर षणमुखम् चेट्टीके बाद वे केन्द्रीय सरकारमें फाइनेन्स मेम्बर (अर्थसचिव) बनाये गये। मेरठके नागरिकोंद्वारा आयोजित एक स्वागत-समारोहमें बोलते हुए आपने अपने जीवनकी एक रोचक घटनाका वर्णन किया।

श्रीदेशमुखजीने कहा कि जब मैं फर्ग्यूसन कॉलेज पूनाका विद्यार्थी था तब लोकमान्य तिलकने एक दिन हमारे प्रिन्सिपल महोदयसे कहा कि 'मुझे एक आवश्यक अर्थसम्बन्धी लेख लिखना है, आप अपने किसी होशियार छात्रको भेज दें, मैं जो बोलूँ उसे वह ठीक-ठीक लिखता रहे।' प्रिन्सिपल महोदयने इस कार्यके लिये मुझे चुना और कहा कि 'आज सन्ध्यासमय पाँच बजे लगभग लोकमान्य तिलकजीके पास चले जाना और वे जो बोलें उसे ठीक-ठीक लिखते रहना।' मैंने इसे अपना अहोभाग्य समझा और सगर्व तिलकजीके चरणोंमें पहुँचा। अकस्मात् उस समय तिलकजीसे मिलने कुछ महानुभाव आ गये और लेख लिखानेके लिये उनके पास समय नहीं रहा। तिलकजी इससे खिन्न थे। मैंने कहा—'आप मुझे समझा दीजिये कि आप क्या लिखाना चाहते हैं। एक स्थूल-सी रूप-रेखा दे दीजिये। मैं स्वयं

लेख तैयार कर लाऊँगा।' इसपर तिलकजी मुसकराये, पर मेरा मन रखनेके लिये उन्होंने अपना विषय और मुद्दे मुझे समझा दिये। अगले दिन मैं वह लेख तैयार करके उनकी सेवामें पहुँचा, जिसे पढ़कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए बोले—'जाओ, हमने तुम्हें आशीर्वाद दिया, तुम एक दिन भारतके फाइनेन्स मेम्बर बनोगे।' तिलकजीका यह आशीर्वाद मुझे बराबर स्मरण रहा; क्योंकि मैं जानता था कि महात्माओंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता और जब मैं रिजर्व बैंकका गवर्नर बन गया तो मैंने समझा कि अब लोकमान्यका आशीर्वाद पूरा हो गया; क्योंकि रिजर्व बैंकके गवर्नर और फाइनेन्स मेम्बरके पदमें कोई ऐसा विशेष अन्तर नहीं है और इसके बाद मैं इस आशीर्वादकी बात बिलकुल भूल गया। परंतु अब भारतसरकारका फाइनेन्स मेम्बर बन जानेके बाद मुझे फिर तिलकजीका आशीर्वाद याद आ गया कि यह मेरी भूल थी कि रिजर्व बैंककी गवर्नरीपर ही मैंने उनके आशीर्वादको पूरा हुआ समझ लिया था। महात्माओंका आशीर्वाद लगभग ही सत्य नहीं होता वह तो अक्षरशः सत्य होता है।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

एक और अफसर

एक पाठशालामें एक समय किसी विद्वान् स्वामीजीका प्रवचन था। विद्यार्थियोंके योग्य अपने सरल प्रवचनमें उन्होंने विद्यार्थियोंको एक दृष्टान्त सुनाया, उसीको यहाँ लिखा जाता है—

एक राजा था, बड़ा शौकीन। इतनेपर भी प्रजाके प्रति उसकी बड़ी लगन थी। प्रजा कैसे सुखी हो इसकी चिन्ता वह सदा करता था।

उसने अपने नगरमें बालकोंको सुबह-शाम दूध मिले, इसकी व्यवस्था सोची। गोचरभूमि खरीदी। सौ गायें मोल लीं और उन गायोंके पालनके लिये उनकी सेवा करनेको एक ग्वाला रखा।

वह ग्वाला गायोंको चराकर सुबह-शाम गायोंको दुहता और दूध दरबारमें दे जाता तथा वहाँसे बालकोंको बँटवा दिया जाता।

इस योजनाके अनुसार बहुत दिनोंतक सुन्दर व्यवस्था चलती रही; पर धीरे-धीरे समाजमें परिवर्तन आया। मौज-शौक बढ़ गयी और महँगीका चक्र चलने लगा। नगरमें खान-पानकी चीजोंकी कीमत बढ़ गयी, कपड़े-लत्तेपर भी महँगाईका असर पड़ा। बेचारा ग्वाला इस महँगीसे घबराया। उसने राजाजीसे फरियाद की, पर कुछ फल नहीं हुआ। नौकरीमें एक पैसा भी नहीं बढ़ा। बँधी नौकरीसे बेचारा इस महँगीमें कुटुम्बका पालन कैसे करता?

और अन्तमें **'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्?'** (भूखा क्या पाप नहीं करता)-के अनुसार उसने रास्ता ढूँढ़ा। गौएँ तन्दुरुस्त होनेके कारण प्रत्येक दस-दस सेर दूध दिया करतीं। कुल पचीस मन दूधमेंसे एक मन निकालकर ग्वालेने एक मन जल मिलाना

शुरू किया। ग्वालेने नीति एक किनारे रख दी। बेचारा और करता भी क्या?

कुछ दिन तो यों चला। एक दिन राजाजीने दूधकी जाँच की। राजाजीको लगा दूध पतला कैसे?

उनको चाहिये था कि वे ग्वालेसे पूछते, उसकी बात सुनते। पतले दूधके लिये कौन जिम्मेवार है, इसका पता लगाते। पर ऐसी व्यावहारिकतासे काम लें तो राजाजी कैसे?

उन्होंने तुरंत ही ग्वालेपर देख-रेख रखनेके लिये एक अफसरको नियुक्त कर दिया। इस अफसरके वेतनका चौथा हिस्सा भी ग्वालेको अधिक दिया गया होता तो? पर यह सब राजाजी क्यों करने लगे।

अफसर साहेबकी कार्रवाई शुरू हुई। अधिक नहीं, सिर्फ दो-तीन दिनोंतक तो वह ग्वाला कुछ नहीं बोला; लेकिन चौथे ही दिन उसने उन साहेबसे कहा—'भाई साहब! काहेमेंसे पेट पूरा करूँ? थोड़ेमें कहूँ तो इतना ही कि आप यदि कृपादृष्टि रखेंगे तो आपके यहाँ भी बच्चे दूध पीते रहेंगे।'

अरे, उस भोले हृदयके ग्वालेकी नीति कहाँ चली गयी? वह कैसे ऐसा नीतिचोर बन गया? यह प्रश्न भी क्या ऐसा है जिसे हमलोग न समझ सकें?

वे अफसर धमकी दे गये; पर उनकी धमकीके पीछे कितना स्वार्थ था? साहेबके बाल-बच्चोंके लिये दूध पहुँचाने लगा; इस कमीको मिटानेके लिये जलके सिवा और था ही क्या, जो मिलाया जाता?

राजाको आजकल निश्चिन्तता थी। पर एक दिन जाँच कर बैठे तो पता लगा कि दूध तो पतला ही होता चला जा रहा है।

राजाजीको और क्या सूझता? एक इन्सपेक्टर अफसर और रखे गये। इन इन्सपेक्टर साहबके यहाँ भी बिना ही दूध खरीदे दूधपाक-हलवा बनने लगा।

अब राजाजीने दूधको गाढ़ा बनानेके लिये उन इन्सपेक्टरके ऊपर एक समिति बना दी। और दूसरे ही दिन समितिके प्रत्येक सदस्यके लिये दो-एक देगची खरीदना आवश्यक हो गया, दूधके आगमनका स्वागत-सत्कार करनेके लिये ही तो। और इस प्रकार ग्वालेका सारा समय गायोंके पालनमें नहीं, पर अफसरोंके 'लालन-पालन'में ही खर्च होने लगा। गायोंकी दूध देनेकी शक्ति घट गयी। मुश्किलसे दस मन दूध गायें दे पातीं और उनमेंसे नौ-साढ़े-नौ मन अफसरोंके यहाँ बँट जाता। कठिनतासे केवल एक मन दूध ग्वालेके पास बचता। उसमें चौबीस मन जल मिलाया जाता और उसे सब दूध कहते!

राजाने फिर जाँच-पड़ताल की, अब प्रधान मन्त्रीसे पूछनेकी बात मनमें आयी। उनको बुलाकर सब बातें बतायीं। प्रधानजी मूँछोंमें मुस्करा दिये।

राजाजीने तंग आकर व्यंगमें पूछा—दूधमें सफेदी तो नहीं होनी चाहिये न? फिर इस दूधमें इतनी सफेदी क्यों है?

प्रधान मन्त्रीने तिरछी नजरसे जवाब दिया—'एक अफसर और नियुक्त कर दीजिये। फिर इतनी सफेदी भी दूर हो जायगी........सिर्फ खाँटी दूध ही रह जायगा.........।'

हमारी आजकी योजनाओंकी तो इस दृष्टान्तके साथ कहीं कुछ लाग-लपेट नहीं है न? (अखण्ड आनन्द)

—जोइताराम पटेल

चौकीदारकी ईमानदारी

श्रीधर्मदास चौकीदार ग्राम-पंचायत धिठती, तहसील चच्योट, जिला मण्डी (हि० प्र०)-को ३ अप्रैल १९६३ के दिन धिठती चच्योट मार्गमें एक बटुआ मिला जिसमें सात सौ रुपये थे। श्रीधर्मदास चौकीदारने उसे रास्तेसे उठाया और जोरसे पुकारा कि 'यह बटुआ किसका है?' उस समय आस-पास खेतोंमें काम कर रहे आदमियोंसे पूछा; किन्तु बटुआ उनका नहीं था। थोड़ी देरमें जिस व्यक्तिका वह बटुआ था, वह चार फर्लांगसे पीछे बुलाया गया। उससे पूछा गया कि 'बटुआ आपका है?' उसने उत्तर दिया कि 'मेरा ही है।' श्रीधर्मदास चौकीदारने उसे सम्मानपूर्वक उसके हाथोंमें सौंप दिया। जब खोलकर देखा तो सात सौ रुपयेकी रकम पूरी थी।

इस समय वह बटुवेवाला, जो कि लाहुलनिवासी था, खुशीमें श्रीधर्मदास चौकीदारको बीस रुपये ईनामके रूपमें दे रहा था; किंतु श्रीधर्मदास चौकीदारने उससे कहा कि 'मुझे ईश्वरने जो दिया है, वह संतोषजनक है। यह तो मेरा कर्तव्य था। आपके खोये हुए पैसे मुझे आपको देने ही हैं।' श्रीधर्मदास चौकीदारके साथ और भी व्यक्ति थे, उन्होंने कहा था कि 'आप क्यों वापिस कर रहे हैं, ये तो आपको रास्तेमें मिले हैं।' किंतु श्रीधर्मदास चौकीदारने कहा कि 'दूसरेकी चीज ले कैसे लेता? यदि लेता तो पता नहीं, भगवान् मुझे कितना और दुःख देते। मेरे लिये दूसरेका धन विषके समान है। मैं एक साधारण

ग्राम-पंचायतका चौकीदार हूँ। मुझको कुल पंद्रह रुपये मासिक वेतन मिलता है। मुझे उसीमें संतोष है। देनेवाला भगवान् है। अगर मैं लालच-लोभमें आकर छिपा लेता तो देखा तो ईश्वरके सिवा किसीने भी नहीं था। पर भगवान् मुझे कैसे क्षमा करते। सम्भवतः भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे, किंतु उनकी कृपासे मैं उसमें सफल हो गया हूँ।'

श्रीधर्मदास चौकीदार एक साधु-भक्त-संत-सेवक ईमानदार और दयाशील व्यक्ति है। भगवान्‌का उपासक दीन-दुःखियोंपर दया करनेवाला और सत्यके मार्गसे कभी भी विचलित नहीं होनेवाला होता है। श्रीधर्मदास गरीब तथा निर्धन घरसे सम्बन्ध रखता है, परंतु साधु-सेवाने उसके चित्तको निर्मल बना दिया है। अतएव श्रीधर्मदास चौकीदार अपनी सच्चाईकी प्रतिभासे आगेके लिये भी प्रतिभाशाली बनता रहेगा।

श्रीधर्मदास चौकीदारने साधु-संतोंके लिये भी अपनी जमीनमें एकान्त स्थानमें एक कुटिया बना रखी है। कुटियामें कोई भी महात्मा ठहर सकता है। श्रीधर्मदास चौकीदार सेवाके लिये तैयार रहता है।

—के० आर० राकेश

प्रभुकी कृपा—एक आप-बीती

बहुत वर्षों पहलेकी बात है। स्वास्थ्य-सुधारके लिये मैं मंसूरी गया हुआ था। किशोरावस्थाका आरम्भ था। होश कम, जोश ज्यादा। एक दिन 'कॉमटी फॉल्स' सैर करनेके लिये चला गया। चोटीपर चढ़नेकी इच्छा हुई। चोटी बड़ी चिकनी और नुकीली थी। ब्रीचेज, मोजा और जूता पहने था। जूता पहने ही चढ़ने लगा। उन दिनों ईश्वरमें विश्वास रखनेकी बात कौन कहे, नाम लेना भी गुनाह तथा शानके खिलाफ समझता था। चढ़ता गया, बढ़ता गया। एक-ब-एक पैर फिसला, लुढ़कने लगा, लुढ़कता गया। नीचे हजारों फुटकी गहराई थी। अनायास हृदयसे आवाज निकली—'हे भगवान्! रक्षा करो'। आप मानें या न मानें, तत्काल ही एक वृक्षकी जड़ हाथमें आ गयी। तिनकेका सहारा मिला। जड़ पकड़कर झूलने लगा। डर भी रहा था कि कहीं जड़ टूट न जाय। दूसरा कोई सहारा भी तो नहीं था। इतनेमें ही साथी लोग आ गये। उन लोगोंने अपना साफा खोलकर नीचे लटकाया। साफाके सहारे किसी तरह ऊपर आ सका। जानमें जान आयी। उस दिनसे ईश्वरमें अपार श्रद्धा हो गयी। नियमित रूपसे संध्या-वन्दना भी करने लगा।

× × × ×

दूसरी घटना सन् १९५९ के नवम्बर ३० की है। अकस्मात् अर्धरात्रिके पश्चात् याद पड़ा कि 'आज सोमवती अमावस्या

है, काशी चलकर बाबा विश्वनाथका दर्शन और गंगास्नान करना चाहिये।' गाँवसे स्टेशन तीन मील दूर। कच्ची सड़क। गाड़ीके समयमें केवल डेढ़ घण्टेकी देर थी। पैदल ही चल पड़ा। स्टेशन आनेपर देखा कि जिस प्लैटफार्मपर काशी जानेवाली गाड़ी लगती है, उसपर एक मालगाड़ी लगी हुई थी। पूछनेपर पता चला 'इंजनमें पानी नहीं है और यह गाड़ी इसी प्लैटफार्मपर रहेगी।' बनारस जानेवाली 'देहरादून एक्सप्रेस' बीचवाली लाइनपर आ रही है। स्टेशनपर दो ही प्लैटफार्म हैं। एक अप ट्रेनोंके लिये, दूसरा डाउन ट्रेनोंके लिये। बीचवाली लाइन अकस्मात् कोई गाड़ी आ जाय तो उसके लिये है। अप प्लैटफार्मपर तो पहलेसे ही मालगाड़ी लगी थी। मैं डाउन प्लैटफार्मपर चला गया। डाउन प्लैटफार्मपर जाते ही देहरादून एक्सप्रेस आ गयी। कुछ समय तो दौड़-धूपमें बीता। ऊँचे दर्जेके सारे डिब्बे और खिड़कियाँ बन्द थीं। एक पहले दर्जेके डिब्बेकी खिड़की खुली थी। छड़ पकड़कर मैं फुटबोर्डपर चढ़ गया। अंदर एक सज्जन आराम कर रहे थे। मैंने पुकारकर दरवाजा खोलनेको कहा। उन्होंने टिकटके विषयमें पूछा। टिकट देखनेके पश्चात् उन्होंने द्वार खोल देनेका वचन दिया। मैं आश्वस्त हुआ। सोचा अभी खोल ही देंगे। गाड़ी खुल गयी। आउटर सिगनलतक तो गाड़ीकी गति धीमी ही रही, परंतु सिगनल पार होते ही गति बड़ी तेज हो गयी। मारे ठण्डके मेरे हाथ ठिठुरने लगे। मैंने अन्दरवाले सज्जनसे दरवाजा खोलनेके लिये पुनः प्रार्थना की। इस बार वे कुछ झल्ला गये। उठकर उन्होंने दरवाजा खोलनेके बजाय खिड़की भी बन्द कर ली। दरवाजा अंदरसे बन्द था। मेरी रही-सही आशा

भी समाप्त हो गयी। ठण्डी हवाके तेज झोंके और सर्दीसे मेरे हाथ फिसलने लगे। मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरा अन्त अब निश्चित है। मेरे हाथ कब छूट गये, मुझे याद नहीं। जब मुझे होश आया तो मैंने अनुभव किया कि मैं डाउन लाइनके बीचमें पड़ा हूँ। लाइन हिलने लगी। मैंने समझा भूकम्प हो रहा है। फिर विचार आया कि कोई गाड़ी आ रही होगी। यह भी याद आ गया कि मैं गाड़ीसे गिर गया हूँ। लाइनका हिलना बढ़ता ही जा रहा था। दाहिने अंगमें चोट काफी आयी थी। दाहिने अंगसे निकम्मा था। बायें हाथकी कोहनीपर जोर देकर उलटनेकी कोशिश करने लगा। प्रभुकी कृपा देखिये! ऐसा लगा कि किसीने मुझे लाइनके बीचसे उठाकर किनारे लुढ़का दिया। मेरे लाइनके किनारे आते ही एक गाड़ी उसी लाइनसे झपाकेके साथ गुजरी। यदि आधा मिनटकी देर होती तो मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते। लाइनके किनारे मैं असहाय पड़ा था। कहीं कोई आता-जाता भी दिखायी नहीं पड़ता था। दस-पाँच मिनटके बाद तीन-चार आदमी आते दिखायी पड़े। एक आदमी आगे बढ़ने लगा तो दूसरेने मना किया—'ए कहाँ जाते हो? पता नहीं मरता है या बच रहा है? नाहक थाना-पुलिसके चक्करमें पड़ोगे।' आगे बढ़नेवालेने कहा—'जो कुछ भी हो, मैं तो जाऊँगा ही।' मैं पड़ा-पड़ा सब सुनता रहा। वह व्यक्ति मेरे पास आ गया। मैं उसे नहीं पहचान सका, किंतु उसने मुझे पहचान लिया। वह मुझे टाँगकर अस्पताल लाया। एक मासतक गयाके 'पिल्ग्रिम' अस्पतालमें रहा। इतना होनेपर भी कोई सांघातिक चोट नहीं आयी थी। दाहिने हाथमें कुछ चोट आयी थी और

सिरमें पत्थर धँस गया था जो साधारण उपचारमें ही ठीक हो गया। डॉक्टर हैरान, देखने आनेवाले हैरान! गयाके स्टेशनमास्टरने कहा—'देहरादून एक्सप्रेस और बम्बई मेलसे गिरनेवाला तो कोई बचा नहीं। ये कैसे बच गये? लगता है किसीने खड़े होकर बचाया है।' अब आप ही सोचिये, किसने मेरी रक्षा की? मेरे पास तो एक ही उत्तर है—'उन्हीं बाबा विश्वनाथने, जिनके दर्शनोंके लिये मैं जा रहा था।'*

—कुमार रणविजयसिंह

---

* इस घटनाको पढ़नेवाले दो बातोंको जीवनमें उतार लें—

(१) चलती गाड़ीमें फुटबोर्डपर खड़े मनुष्यको दरवाजा खोलकर अवश्य अन्दर ले लें और (२) विपत्तिमें पड़े हुएके पास जाकर उसे बचानेका अवश्य प्रयत्न करें।

—सम्पादक

छोटेका बड़ा मन

जाड़ेका कँपाता प्रातःकाल था। मैं अपने कमरेमें खिड़कीके पास बैठा पढ़ रहा था। इतनेमें मेरे कानमें आवाज आयी—'माई! कोई फटा-पुराना कपड़ा हो तो दो न। सर्दीसे मरी जा रही हूँ।'

मैंने खिड़कीसे बाहरकी ओर देखा तो सामने रहनेवाले सेठके मकानकी देहलीके पास बाहर एक भिखारिन खड़ी थी। बुढ़ापेके कारण उसकी कमर बिलकुल झुक गयी थी। सारे शरीरपर झुर्रियाँ पड़ी थीं। देहको गला दे, ऐसी सर्दीसे काँपते हुए शरीरपर एक ही कपड़ा था। उसने जब दो-चार बार इस तरह करुण आवाज लगायी, तब अन्दरसे सेठानीकी जोरकी आवाज सुनायी दी—'इतने सबेरे कौन निकम्मा बैठा है तुझे देनेको? जा, चली जा।'

'माजी! भगवान् तुमको.........' उसके पूरे बोलनेके पहले ही सेठानी चीख उठी—'अरी जमकू! निकाल, निकाल इसको यहाँसे ऐसे न जाने कितने चले आयँगे........'

और मैं मन-ही-मन सोचने लगा—'क्या कच्छके दातारोंकी पाली-पोसी हुई मानवता मर गयी? ....'

वहाँ आँगनमें कूड़ा बुहारती हुई 'जमकू' मालकिनका हुक्म सुनकर बाहर आयी। मैंने सोचा—यह अभी भिखारिनका हाथ पकड़कर बाहर ढकेल देगी, पर वहाँ तो इस गरीब नौकरानीके हृदयमें अचानक करुणाका झरना फूट निकला। इसने

भिखारिनकी रोनी सूरत देखकर तुरंत अपने सिरकी ओढ़नी उतारकर उसके शरीरपर फेंक दी।

मैं देखकर सोचने लगा—'नहीं-नहीं, वह मानवता अभी मरी नहीं है। किसी-किसीके हृदयमें अब भी बस रही है।'

(अखण्ड आनन्द)

—धीरेन्द्र मेहता

पीपल—भयंकर-से-भयंकर विषधर सर्पका अचूक इलाज

उपर्युक्त शीर्षकसे मेरा एक लेख 'कल्याण' वर्ष ३४, अंक २ (फरवरी) सन् १९६० के पृष्ठ ७६६ पर पीपल-पत्रके द्वारा सर्प विषनाशके प्रयोगके सम्बन्धमें प्रकाशित हुआ था। उसके बाबत मेरे पास सैकड़ों पत्र पूछ-ताछके लिये आये हैं। कुछ ऐसे पत्र भी आये हैं, जिनमें प्रयोगसे पूर्ण लाभ होनेकी घटनाओंका उल्लेख है। इस सम्बन्धमें कई सज्जनोंने प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर मैं यहाँ लिख रहा हूँ।

(१) सर्प काटनेके चाहे जितनी देर बाद भी यह प्रयोग किया जा सकता है। यदि रोगी जीवित है तो प्रयोगसे उसका विषमुक्त होना निश्चित है।

(२) बेहोशी हो जाने तथा नाकी बैठ जानेके बाद भी यह प्रयोग काम करेगा, बशर्ते कि खूनकी चाल बन्द न हो गयी हो। मैंने मूसानगरके श्रीबद्रीप्रसादजीकी पुत्रीपर साँप काटनेके ६ घण्टे बाद प्रयोग किया था, उसकी नाकी बैठ गयी थी, पर वह अच्छी हो गयी और आज मौजूद है।

(३) रोगीको पाँच ही आदमी पकड़ें—कम-ज्यादा नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। अभिप्राय इतना ही है कि रोगी किसी प्रकार भी हिल-डुल न सके, फिर चाहे कितने ही आदमी पकड़ें। पाँच आदमियोंके पकड़नेसे प्रायः प्रत्येक अंग पकड़ा

जाता है, इसलिये पाँचकी संख्या लिखी गयी थी।

(४) रोगीको लिटाकर या बैठाकर चाहे जैसे प्रयोग किया जा सकता है। पर मेरी समझमें बैठाकर पत्ते डालनेमें अधिक सुविधा रहेगी।

(५) मैंने अबतक काले सर्पोंके काटे रोगियोंपर ही यह प्रयोग किया है; क्योंकि इधर दूसरी तरहके साँप हैं ही नहीं। अत: मैं निश्चित नहीं बता सकता। आप प्रयोग करके देख सकते हैं।

(६) मैंने मनुष्योंपर ही इसका प्रयोग किया है। जानवरोंपर कभी प्रयोग नहीं किया। इससे मेरा अनुभव नहीं है। किसी पशुको साँप काटनेकी घटना सामने आये तो आप प्रयोग करके देख सकते हैं।

(७) सर्पका विष उतारनेका जैसा यह सिद्ध प्रयोग मैं जानता हूँ, वैसा बिच्छू आदि अन्य जहरीले जन्तुओंके विषनाशका मैं नहीं जानता। थोड़ा-थोड़ा जैसे और लोग जानते हैं, वैसा ही मैं भी जानता हूँ।

(८) पीपलसे कुछ पत्तोंकी एक डाली तोड़ लीजिये। डालीमें जो पत्ते होते हैं, उनमें प्रत्येक पत्तेके पीछे एक सींकके समान डण्डी होती है। जब पत्ते डालीसे तोड़ें तो उसे सींक या डण्डी समेत तोड़ें। उसी डण्डी या सींककी नोकको रोगीके कानमें डालिये।

(९) आप रोगीके सामने बैठ जाइये। अपने दोनों हाथोंमें एक-एक पत्ता ले लीजिये और दाहिने हाथके पत्तेकी सींक रोगीके बायें कानमें और बायें हाथके पत्तेकी सींक रोगीके दाहिने कानमें डालिये।

(१०) अनुमानसे एक इंच डालनेकी बात लिखी थी। असलमें कानके पर्देतक नोक पहुँच जानी चाहिये। यदि नोक दूर होगी और जहर होगा तो रोगी चिल्लायेगा नहीं। वह न चिल्लाये, तबतक सींकको कानमें डालते रहें। जब चिल्लाना शुरू करे, तब रोक दें।

(११) जबतक जहर कमर और सीनेसे ऊपर नहीं पहुँचेगा, तबतक पत्ता काम नहीं करेगा। अतः बन्ध बँधा होनेपर यदि जहर रुका होता है तो पत्ता काम नहीं करता । किन्तु चाहे जितना भी बन्ध हो, धीरे-धीरे जहर बन्धको पार करके कुछ देरमें ऊपर अवश्य आयेगा। जब पत्ता लगानेपर रोगी चिल्लाने लग जाय तब उसी समय बन्ध खोल देना चाहिये। अन्यथा पत्ता बन्धके ऊपरका ही जहर खींच सकेगा! बन्धके नीचेका जहर ज्यों-का-त्यों रह जायगा।

(१२) मैंने हरे पत्तेका ही प्रयोग किया है और मैं समझता हूँ कि सूखा पत्ता काम नहीं करेगा।

(१३) जहर कमर और सीनेके ऊपर चढ़ा या नहीं, इसकी परीक्षाके लिये नीमकी पत्ती रोगीको चबवाइये। नीमकी पत्ती कड़वी लगे और रोगी थूक दे तो समझिये जहर नहीं है। चबाता जाय तो जहर है। नीममें भी विषनाशक गुण है। रोगीको नीमकी पत्ती चबवानेसे जहर मरता है और जहर मरते ही पत्ती कड़वी लगने लगती है। फिर रोगी उसे चबाता नहीं।

(१४) अपने स्थानमें पीपलका पेड़ न हो तो जहाँ पेड़ हो, वहींसे डाली तोड़कर मँगवा सकते हैं।

(१५) पीपलके वृक्षके नीचे रोगीको ले जानेकी आवश्यकता नहीं है। जहाँ रोगी हो, वहीं डाली मँगवाकर पत्तोंका प्रयोग कर सकते हैं।

(१६) सर्प काटनेपर घाव नहीं होता। उसे यदि चीर दिया गया हो तो फिर उस जगह कुएँमें डालनेवाली लाल दवा (पोटाश परमैगनेट) भर देनी चाहिये। दस-पाँच दिनोंमें घाव आप ही ठीक हो जायगा।

(१७) रोगीके ठीक हो जानेपर उसे एक-से-डेढ़ छटाँकतक गायके शुद्ध घृतमें १०-१२ काली मिर्च पीसकर मिलाकर पिला देना चाहिये और कम-से-कम ८ घंटे सोने नहीं देना चाहिये।

(१८) मुझे विश्वास है कि इस प्रयोगसे अवश्य लाभ होगा, बहुतोंको लाभ पहुँचा है, यह मेरा अनुभव है। मैंने न तो कोई उनकी सूची बनाकर रखी है और न किस-किसको आराम हुआ, उनके नाम बतानेकी आवश्यकता ही है। आपको विश्वास हो तो प्रयोग करके देखिये। 'कल्याण' में प्रकाशित होनेके बाद इस प्रयोगसे लाभ होनेके मुझे कई पत्र मिले हैं।*

---

* हमारे पास भी इस प्रयोगसे लाभ होनेके कई पत्र आये हैं। एक पत्र अभी हालमें श्रीवीरसिंहजी चौहान, नया-गाँव, पो० खोड़ (शिवपुरी)-का आया है, जिसमें लिखा है कि "यहाँ सेठ रामसेवकजी गुप्तकी धर्मपत्नीको संध्या ६ बजे एक भयंकर काले सर्पने डस लिया। स्थानीय तथा बाहरी बहुत-से जानकार महानुभावोंने सभी तरहके उपचार किये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ। उनको मृतक मान लिया गया। सब निराश हो गये। तब ईश्वरीय प्रेरणासे मुझे 'कल्याण' में प्रकाशित प्रयोगकी बात याद आयी। प्रयोग आरम्भ किया गया और करीब १४ पत्ते बदलनेपर वह पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। समस्त विष उतर गया। जब रोगिणीने स्वयं बतलाया, तब सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ।"

—सम्पादक

(१९) जिनको फिर भी कोई शंका हो, वे मुझे नीचे लिखे पतेपर जवाबी कार्ड लिखकर पूछ सकते हैं। पर मुझको पत्र हिंदी या अंग्रेजीमें ही लिखना चाहिये।

—मेवालाल तार्किक, पो० मूसानगर (कानपुर) उ० प्र०

आदर्श सास

आशारामजी बहुत पैसेवाले आदमी थे। बड़ी इज्जत थी। उनकी साध्वी पत्नीका नाम था गंगाबाई। उनके दो पुत्र थे— मंगलचंद और शिवदयाल। मंगलचंदका विवाह हो गया था। बहू सीता घरमें आ गयी थी। उसका स्वभाव कुछ रूखा था। वह बात-बातपर खीझ जाती; पर भली सास कुछ नहीं बोलती, हँस देती। शिवदयालका विवाह भी हो गया। उसकी पत्नी रामा भी घरमें आ गयी। रामाके पिता पहले बहुत पैसेवाले थे, पर दैवयोगसे उनका काम कच्चा रह गया। अतएव रामा सदा उदास रहती। सोचती, घरमें मेरा अनादर होगा। गरीबकी लड़कीका पैसेवाले ससुरालमें आदर क्यों होगा। परंतु साध्वी गंगाने तथा आशारामजीने अब उसके साथ विशेष स्नेहका बर्ताव आरम्भ कर दिया। मंगलचंदका भी व्यवहार बहुत ही सुन्दर था। पति शिवदयाल अभी पढ़ते थे, पर उनका बर्ताव स्नेहभरा था। परंतु अपढ़ स्वभाववश सीता जेठानी बीच-बीचमें कुछ ताना मारा करती थी। बात यह थी कि रामाके विवाहमें मुँह दिखायी आदिके नौ हजार रुपये आये थे। वे रुपये उसके पिताके पास थे। पिता व्यापारमें नुकसान हो जानेसे उन्हें दे नहीं सके। अतः सीता समय-समयपर रामाके माता-पिताके लिये कुछ-न-कुछ कह दिया करती थी। सास रोकती, पति भी समझाते; पर उसका स्वभाव ही ऐसा था। रामा चुपचाप रोया करती। एक दिन भली सासने अकेलेमें आकर रामाके हाथमें नोटोंका बंडल दिया और

कहा कि 'बेटी! ये रुपये ले जा, लगभग साढ़े दस हजार रुपये हैं। तू इन्हें ले जाकर अपने पिताको दे दे और कह दे कि ब्याजसमेत हमारे रुपये लौटा दें। तेरे पिता यह न समझें कि उन्हें दान या सहायता दी जा रही है। उनको अब जैसे अभी हमारे घरके रुपये देने हैं, इसके बाद मेरे देने रहेंगे। जब वे देंगे, तभी मैं ले लूँगी। और बेटी! मैं भी लेकर तुमलोगोंको ही तो दूँगी। अरथीपर बाँधकर साथ थोड़े ही ले जाऊँगी; अतः अगर मैं मर जाऊँ और तेरे पिताजीकी स्थिति उसके बाद रुपये देनेकी हो तो वे तुझे दे दें। मैं इसमें यह बात लिखकर लायी हूँ, तू जाकर अपने पिताजीको दे दे और समझा दे कि वे एक-दो दिनमें ही इनके रुपये लौटा दें।

रामा सासके बर्तावको देखकर दंग रह गयी। उसके आँसू बह चले और उसने सासके चरण पकड़ लिये। वह पिताके पास गयी, रुपये तथा सासका लिखा पत्र दे दिया। उन्होंने बड़े ही संकोचसे रुपये लिये। दूसरे दिन रामाके रुपयोंका हिसाब करके उसके ससुरजीको रुपये भेज दिये। गंगाने यह बात अपने पतिके सिवा बेटोंसे भी नहीं कही। पतिकी तो आज्ञा थी ही। अब सीताका मुँह बंद हो गया। रामा सुखी रहने लगी।

पाँच-छः वर्षों बाद एक व्यापारमें रामाके पिताने रुपये कमा लिये और रामाकी सासके रुपये ब्याजसमेत लौटा दिये गये।

बात-बातमें बहूपर अकारण ही खीझनेवाली, ताना मारनेवाली तथा उसके माता-पिताको खोटी जबान कहनेवाली आजकी सासुएँ इसपर ध्यान देकर अपने जीवनमें परिवर्तन करें।

—हरनारायण

मुल्लाजीकी मानवता

मेरे पिताजीका देहावसान हुए अधिक समय व्यतीत हो चुका। उस समय मेरी आयु पाँच वर्षसे भी कम थी। उन दिनों हमारे परिवारमें लगभग ३०-३२ प्राणी थे। कृषि एवं शासकीय सेवाके फलस्वरूप अच्छी आय हो जाती थी।

कालान्तरमें हमारी गृहदशामें परिवर्तन होने लगा। ऋणमें वृद्धि तथा आयका अभाव हो गया।

एक दिन हमलोगोंने मिलकर यह निश्चय किया कि अब अलग-अलग होकर, भविष्यमें ऋण न बढ़े एवं भूमि भी ज्यों-की-त्यों बनी रहे—ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। प्रत्येक सम्पत्तिके तीन भाग हुए और ६,००० रु० से अधिक जो ऋण हो चुका था, वह भी २,००० रु० के लगभग प्रत्येकको बाँट दिया गया।

मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि यह सब होनेवाला है। अतः मैं व्याकुल होकर किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। अन्तमें मैंने आत्मघात-जैसा जघन्य अपराध करनेका विचार किया। मेरी पू० माताजीको यह सब ज्ञात हो गया और उन्होंने कई उदाहरण देकर मुझे इस पापसे बचाया।

कुछ खेत (जो मेरे भागमें आये थे) रेहन रखकर मैं ऋण-मुक्त होनेकी योजना कार्यान्वित करने लगा। मेरे हिस्सेमें जो ऋण आया था, उसमें ४०० रु० उसी ग्रामके एक मुल्लाजीके भी थे। किसी समय उनकी दूकान सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी, किंतु

इन दिनों उनकी भी वह दूकान नष्टप्राय-सी हो गयी। कठिनाईसे तीस-चालीस रुपये मासिक आय हो जाती होगी।

जब मैं ४०० रु० उनके सामने रखकर बोला—'मुल्लाजी साहेब! लीजिये, ये रुपये हमारे (सम्मिलित समयके) खातेमें जमा कर लीजिये।' वे अपनी बही उठाकर पन्ने उलटने लगे। अचानक उनके हाथ स्तब्ध-से रह गये और न जाने क्यों उनकी आँखोंसे अश्रु-बिन्दु निकलकर श्वेत-श्याम दाढ़ीमें विलीन होने लगे। मैं समझ नहीं सका कि यह सब क्यों हो रहा है।

जैसे-तैसे उन्होंने वे ४०० रु० मेरे हाथमें रखते हुए भर्रायी हुई आवाजसे कहा—'भाई मनोहरलाल! तुम्हारे पिताजीका और मेरा बड़ा दोस्ताना था। उन्होंने एक बार ३०० रु० मुझे रखनेके लिये दिये थे, जिनकी कोई लिखावट आदि नहीं है। तबसे आजतकके सूदको तो मैं नहीं दे सकता, परन्तु अब ये ४००रु० मैं तुमसे नहीं लूँगा।' यों कहकर वे गम्भीर हो गये। मैं भी अपने-आपको सँभाल नहीं सका और भीगी आँखोंसे घर लौट आया।

जब कभी भी वे मुल्लाजी मुझे मिल जाते हैं, श्रद्धासे मेरा मस्तक अपने-आप झुक जाता है—इसलिये नहीं कि उन्होंने मेरे रुपये लौटा दिये, परंतु इसलिये कि आजके युगमें भी ऐसी मानवता वर्तमान है।

—मनोहर शर्मा 'विशारद' पोलायकलाँ

प्रभुकी कृपा

जीवनमें ऐसे भी क्षण आते हैं, जब हम चारों ओरसे निराश हो परम पिता परमात्माको आर्त होकर पुकार उठते हैं और प्रभु तत्क्षण हमें अपनी मंगलमयी कृपाके द्वारा विपत्तियोंसे उबार लेते हैं।

ऐसी ही एक सत्य घटना है, जो अभी-अभी कुछ समय पूर्व मेरे जीवनमें घटित हुई—

मेरे पति रेलवेमें एक उच्चपदस्थ कर्मचारी हैं। जब उन्हें इस जगहका नियुक्ति-पत्र मिला, तब उसकी एक धाराके अनुसार एक बड़ी लम्बी धनराशि जमा करनी थी। नियुक्तिकी समस्त धाराएँ स्वीकार करनेपर ही उस पदपर नियुक्ति हुई। अथक परिश्रम और प्रयत्न करनेके पश्चात् बड़ी कठिनतासे उस धनराशिका केवल आधा भाग ही जमा करवाया जा सका, शेष आधेके लिये उच्चाधिकारीने एक मासका समय दिया और यह सूचना दी कि यदि 'शेष धनका प्रबन्ध नहीं हुआ तो आप इस पदसे हटा दिये जायँगे।' पर लाख प्रयत्न करनेपर भी उस धनराशिका प्रबन्ध नहीं हो सका। हमारा दोनोंका बुरा हाल था। कहींसे भी आशाकी एक भी किरण न दिखायी दी। दिवालीका दिन था और हमारा मन बड़ा खिन्न था। हम निराश होकर रो-रोकर अपने प्रभुको पुकार रहे थे। जीवनमें इतनी निराशा और फीकी दिवाली कभी नहीं आयी थी। वापस जाना अच्छा नहीं लग रहा था और यदि दो दिनमें रुपयोंका प्रबन्ध न हो सका तो पदच्युत होना निश्चित ही था।

मन अत्यन्त उदास था, पर भगवान्‌के ऊपर हमारा दृढ़ विश्वास था कि कोई-न-कोई दैवी शक्ति हमें इस संकटसे उबार लेगी। ठीक इसी समय, जब हम दोनोंकी मनोदशा दयनीय थी, तभी एक सज्जन हमारे घरपर आये और उन्होंने हमारे विश्वासको बल दिया और यह आश्वासन दिया कि 'चिन्ता त्यागकर ईश्वरसे प्रार्थना करो—प्रभु जो करेंगे वह मंगलमय ही होगा।' हम आर्त होकर प्रभुसे प्रार्थना करते रहे और उन्होंने हमारी पुकार सुनी ही नहीं, हमें आश्चर्यमें डालकर सभी कष्टोंको मिटाकर परम आनन्द प्रदान किया। ठीक दिवालीके दो ही दिन बाद एक सूचनाद्वारा यह समाचार मिला कि 'जिस धनराशिका जमा कराना नियुक्ति-पत्रकी धाराके अनुसार आवश्यक था, वह धनराशि आधी कर दी गयी।' इस समाचारसे हमारे आनन्दकी सीमा न रही।

उस परम प्रभुकी कृपाके साक्षात् दर्शन करके हम धन्य हो गये। मेरा यह अटल विश्वास है कि प्रभुसे यदि सच्चे मनसे प्रार्थना की जाय और आर्त होकर प्रभुको पुकारा जाय तो वे अवश्य ही प्रार्थना सुनेंगे। चाहिये प्रार्थनामें सच्ची आर्तता और प्रभुमें अटल विश्वास!

—श्रीमती प्रेमलता चतुर्वेदी, प्रभाकर

गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी)-की दवा

घरमें गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी)-की बीमारी हो गयी। गत ता० १३ ।५ ।५९ को एक्सरे लिया तो नौ पत्थर थे। कलकत्ते-बम्बईमें बड़े-बड़े डॉक्टरोंको दिखलाया गया। सबने यही कहा कि 'ऑपरेशनके बिना रोग अच्छा नहीं होगा। कोई भी दवा काम नहीं करेगी। तदनन्तर लगभग सालभर पहले श्रावणमें श्रीवैद्यनाथजी वैद्यसे बात हुई। उन्होंने कहा—'नारियलके फूल २१, काली मिर्च ७ के साथ पानीमें पीसकर उसे पिलाओ।' दस महीने लगातार यह दवा दोनों समय दी गयी। फिर बद्रीनारायण-यात्रामें चले जानेसे दवा बंद रही। यात्रासे लौटनेपर बम्बईमें एक्सरे कराया गया, तब पता लगा कि 'तीन पत्थर तो बिलकुल ही नहीं हैं। दूसरे पत्थर भी घिस रहे हैं।' नौ पत्थर चनेके दानेसे भी बड़े-बड़े थे। सारे शरीरमें खास करके छातीमें बड़े जोरका दर्द रहता था। बीच-बीचमें हिचकियाँ आती थीं। ये सब उपद्रव शान्त हो गये। एक्सरेका परिणाम देखकर डॉक्टरने कहा कि 'हमारे यहाँ ऐसी कोई दवा नहीं है, जो ऐसे पत्थरोंको गला दे।' वे आश्चर्य कर रहे थे।

जहाँ नारियल होते हैं, वहाँ नारियलके फूल आसानीसे मिल जाते हैं। एक बड़ा सिट्टा-सा होता है, जो ऊपरसे बंद रहता है। तोड़कर रख देनेसे यह पाँच-सात दिनोंमें अपने-आप फट जाता है। ऐसे एक सिट्टेमें लगभग एक सेरसे अधिक फूल निकलते हैं; जो दवाके काममें लिये जाते हैं।

मैंने यह अपने अनुभवकी बात लिखी है। लोग प्रयोग करके देखें।

—ओंकारमल पोद्दार

आर्त पुकारसे प्राणरक्षा

सन् १९४६ ईस्वीका समय था। उस समय बंगालमें सुहरावर्दीके मुख्य मन्त्रित्वका बोलबाला था। उनके मन्त्रित्वका मुख्य उद्देश्य था—हिंदुओंके ऊपर मनमाना अत्याचार करना, जिससे हिंदुओंकी जड़ बंगालसे एकदम उखड़ जाय। १६ अगस्त, १९४६ ई० की उनकी काली करतूत किसी अत्याचारी शासकके अत्याचारको भी मात करती है। उनका अत्याचार नोआखालीतक बढ़ता गया। इसका नतीजा यह हुआ कि बगलके प्रदेश बिहार और संयुक्तप्रान्तमें भी साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये।

उस समय मैं मजिस्ट्रेट था और मेरी बहाली एक वर्ष पहले हुई थी। हमारे शहरमें भी दंगा हुआ और हमें सशस्त्र पुलिसके साथ एक मुहल्लेमें जाना पड़ा तथा वहाँ हमें एक महीनेतक रहना पड़ा। वहाँ मैंने हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी जानें बचायीं। इसलिये मुहल्लेके लोगोंने कलक्टर साहबसे कहकर उस मुहल्लेसे मेरा जाना कुछ दिनोंके लिये रोकवा दिया।

उस मुहल्लेमें एक दिन मुझे एक सुनसान कोठरीमें जानेका अवसर मिला, जिसमें कुछ पुराने बोरे भरे थे। मैं दीवालकी जड़में दरवाजेके मुँहपर थोड़ी देर खड़ा रहा। इतनेमें देखता हूँ कि एक गेहुँवन साँप करीब तीन-साढ़े-तीन हाथका बोरोंसे निकला। उसे देखते ही मेरे होश उड़ गये। काटो तो बदनमें खून नहीं। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। किसी तरह वहाँसे भागनेकी भी सुविधा नहीं थी। उसे मारना भी सम्भव नहीं था। कोठरीसे

भाग निकलनेमें खतरा था कि साँप यह समझकर कहीं डस न ले कि यह मनुष्य मुझे मारने आ रहा है। करीब एक मिनटतक इस हालतमें रहा। तब मैंने अपने मनमें यह सोचा कि अब भगवान्‌को छोड़कर मुझे कोई नहीं बचा सकता और मैंने निम्नलिखित श्लोकको मन-ही-मन पढ़ना शुरू किया—

ॐ या त्वरा द्रौपदीत्राणे या त्वरा गजरक्षणे।
मय्यार्ते करुणामूर्ते! सा त्वरा क्व गता हरे॥

एक मिनट बाद ही साँप वहाँसे बिलमें चला गया, इसके बाद मैं वहाँसे भागा।

× × ×

—बनारसीप्रसाद सिंह, डि० मजिस्ट्रेट एवं डि० कलक्टर

रामकी कृपा

घटना कई वर्ष पहलेकी है। मेरे पूज्य पिताजी, माताजी तथा मेरी छोटी बहन नैमिषारण्य तीर्थ गये थे। वहाँसे कुछ मील दूरपर, हत्याहरण-तीर्थ है। वे वहाँ भी गये थे। उस समय बैलगाड़ीपर आना-जाना पड़ता था। लौटते समय बैलगाड़ीवालेने एक नदीके किनारे गाड़ी रोक दी और पड़ोसके गाँवसे सलाई लानेका बहाना लेकर वह चला गया। इधर संध्या हो रही थी। अँधेरा बढ़ रहा था। पिताजी बड़ी चिन्तामें थे—'अँधेरी रात है, अभी काफी रास्ता तै करना है। गाड़ीवान लौटा नहीं। कैसे गाड़ी चले?' इतनेमें दिखायी दिया कि गाड़ीवान चार-पाँच लठैतोंको लेकर आ रहा है। इस दृश्यको देखकर पिताजी घबराये। उन्होंने जान लिया कि यह तो हमलोगोंको लूटनेकी तैयारीमें है। उस समय उन्हें भगवान् श्रीरामके आश्रयके सिवा और कुछ नहीं सूझा। उन्होंने राम-नामकी धुन लगा दी और मेरी माता तथा बहनसे कहा कि तुमलोग भी रामका आश्रय लेकर राम-नाम-कीर्तन करो। घोर विपत्तिमें धनुर्धर एकमात्र भगवान् राम ही रक्षा कर सकते हैं। सबने मिलकर धुन लगायी। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि दो जवान बहादुर घुड़सवार हाथोंमें बन्दूक लिये वहाँ आ गये हैं (प्रकट हो गये हैं) और गाड़ीवानको ललकारकर कह रहे हैं 'क्यों रे बदमाश! यात्रियोंको अकेले पाकर गुंडोंको ले आया है और इन्हें लूटनेकी तैयारी की है?' यों कहकर उसकी पीठपर दो चाबुक लगा दिये और बोले—'जल्दी गाड़ी जोड़

और यात्रियोंको तुरन्त नैमिषारण्य पहुँचा, हम साथ चल रहे हैं।' गाड़ीवानके साथी तो भाग गये और गाड़ीवान काँपने लगा। पिताजी चुपचाप खड़े देख रहे हैं। वे मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हैं और अपने मनसे वे संकटहारी दोनोंको भगवान्के रूपमें ही मानो देख रहे हैं। उनसे बोला नहीं गया। दृष्टि दोनों तरुणोंपर गड़ी रही।

बस फिर क्या था। गाड़ीवानने गाड़ी जोड़ दी और गाड़ी उनको लेकर नैमिषारण्यकी ओर चल दी। जबतक नैमिषारण्य अत्यन्त समीप नहीं आ गया, तबतक तो वे साथ दिखायी दिये। फिर अदृश्य हो गये। पिताजी वगैरह सकुशल धर्मशालामें पहुँच गये।

—रामकृष्ण बिहानी, निलफामारी (पू० पाकिस्तान)

पानवालेकी ईमानदारी

बात अगस्तकी है। मैं छुट्टियाँ समाप्त कर कानपुर पढ़नेके लिये जा रहा था। मेरे साथ मेरे कक्कू (चाचाजी) थे। वे कानपुर कपड़ा खरीदने जा रहे थे। उनके पास ५५०रुपये थे तथा ५०रुपये मेरे भी थे। सम्पूर्ण ६००रुपये की रकम एक झोलेमें थी। ज्यों ही हम दोनों स्टेशनपर पहुँचे कि भगवान्‌की अनुकम्पासे बस भी आ गयी। मैं शीघ्रतासे बसमें चढ़ गया और कक्कू भी पान खाकर आ गये। परंतु उनके हाथमें झोला नहीं था। इस बातका ध्यान न उन्हें था और न मुझे। बस जब धीरे-धीरे रेंगने लगी, तब वह पानवाला, जिसकी दूकानपर कक्कूने पान खाया था। दौड़ता दिखायी दिया। वह बस रुकवानेके लिये चिल्ला रहा था। जब बस रुकी तब वह हाँफता हुआ आया और बोला—'दादा! यह आप अपना झोला लीजिये और अपना सामान देख लीजिये।' झोला नाम सुनकर और अपने पास न देखकर हम दोनों सन्न रह गये। पानवालेका नाम वेदपाल था। वेदपालने कहा, 'जब आप पान खाकर बसपर चढ़े, तब झोला मेरी दूकानपर भूल गये। जब बस चलनेको हुई तब मैंने झोला देखा। खोला तो रकम देखकर सन्न रह गया और मैं उसी समय झोला उठाकर बसकी तरफ दौड़ा और आप मिल गये।

उसकी इस ईमानदारीको देखकर हम दोनों उसके प्रति इतने कृतज्ञ तथा प्रेमविह्वल हुए कि मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकला। अन्तमें कक्कू अपनेको संयतकर उसे दस रुपये देने लगे। तब

वह बड़ी नम्रतासे बोला—'दादा! यह तो मेरा कर्तव्य था। कहीं कर्तव्य करनेपर पुरस्कारकी आवश्यकता होती है?' मैं उसकी इस ईमानदारीपर इतना मुग्ध हुआ कि मुझसे बोलातक नहीं गया और मैंने यह भी नहीं जाना कि वह कब चला गया। बादको जब कक्कू लौटकर स्टेशन पहुँचे और वेदपालके बारेमें जानकारी की, तब यह भी ज्ञात हुआ कि इसी वर्ष जूनमें उसका घर आगसे भस्म हो गया था।

धन्य है उसकी नेकनीयतको। उसे रुपयेकी इतनी आवश्यकता थी, फिर भी उसने छः सौ रुपयेके लोभका सहज ही संवरण कर लिया। यह आजके युगमें असाधारण बात है। सबको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

—दिवाकरप्रकाश त्रिपाठी

ईमानदारी तथा सहृदयताका आदर्श

कुछ समय पहलेकी बात है। एक अच्छे फर्ममें अकस्मात् घाटा लगा। लड़कीका ब्याह था। सम्पन्न घरसे सम्बन्ध हुआ था, पर घाटा लग जानेके कारण विवाहके लिये रुपये नहीं रह गये। घरमें ठोस सोनेका गहना था। एक नेक मित्रके यहाँ चुपकेसे बन्धक रखकर अठारह हजार रुपये लाये गये थे। कोई लिखा-पढ़ी आपसमें नहीं की गयी। केवल गहना तौलकर एक सादे कागजपर लिख दिया कि इतने तोले सोनेका गहना है और अठारह हजारका हैंडनोट लिखकर दे दिया। जिनके यहाँ गहना रखा गया, उनसे कुछ भी नहीं लिखवाया। उन्होंने रुपये बहीमें नाम लिख लिये और सोनेके वजनका वह पन्ना गहनेके डिब्बोंमें रखकर डिब्बे तिजोरीमें रख दिये। कन्याका विवाह इज्जत-प्रतिष्ठाके साथ भली-भाँति सम्पन्न हो गया। कुछ वर्षोंके बाद दैव-दुर्विपाकसे गहना बन्धक रखकर रुपये लेनेवाले सज्जनका देहान्त हो गया। घर तो गरीब हो ही चुका था। पर उनके कोई पुत्र नहीं था। दो कन्याएँ अविवाहित और थीं। कन्याओंकी माता बचे हुए गहनेको बेच-बेचकर तथा एक मकान छोटा-सा बचा था, उसके किरायेसे काम चलाती थी। कुछ दिनों बाद तो उसके खर्चकी व्यवस्था भगवत्कृपासे हो गयी थी। पर कन्याओंके विवाहके लिये उसके पास पैसे नहीं थे। वह बड़ी ही चिन्तित थी। पतिने गहने बन्धक रखनेकी बात पत्नीसे नहीं कही थी। यह कह दिया था कि गहना बेचकर रुपये लाये गये हैं। अतः

उसको पता भी नहीं था कि कहीं किसीके यहाँ गहना बन्धक रखा गया है।

रुपये देकर गहने बन्धक रखनेवाले महाजनको ब्याज भी नहीं मिला, पर सोनेका भाव क्रमशः बढ़ रहा था। उनके हाथकी लिखा-पढ़ी कहीं थी नहीं। वे बेईमानी करना चाहते तो बढ़े भावका सारा सोना हड़प जाते तथा हैंडनोटके आधारपर बहीमें लिखे रुपयोंके लिये नालिश करके कर्जदारका छोटा मकान नीलाम करवा सकते थे, उसके घरके सामानपर कुर्की ले जा सकते थे। पर भगवान्‌की कृपासे उनकी बुद्धिमें बुराई नहीं आयी।

उन्होंने किसीको कुछ बताया तो नहीं, पर मनमें निश्चय कर लिया कि 'सोनेका भाव बढ़ा है, अतएव यह लाभ जिसका सोना है उसीको मिलेगा। उनकी पत्नी तथा लड़कियाँ तकलीफ न पावें, इसकी व्यवस्था करनी है और दोनों कन्याओंके विवाहके समय पूरा गहना लौटा देना है।' इस निश्चयके अनुसार ही उन्होंने मासिक डेढ़ सौ रुपये कन्याओंकी माताको प्रतिमास मनीआर्डरसे भेजनेवालेका फर्जी नाम-पता देकर, भेजनेकी व्यवस्था कर दी। जबतक यह व्यवस्था नहीं हुई, तबतक तो कष्ट रहा, व्यवस्था होनेके बाद उसका कष्ट दूर हो गया था। पर वह बहुत चेष्टा करनेपर भी पता नहीं लगा सकी थी कि रुपये कहाँसे नियमितरूपसे प्रतिमास आ रहे हैं।

वे सज्जन इतना ही नहीं करते थे, उसके घरकी सारी खोज-खबर रखते और जब कभी कोई आवश्यकता देखते, तब उसकी पूर्तिकी व्यवस्था किसी तरह करवा देते। लड़कियोंकी अवस्था विवाहके योग्य हो गयी। माता बड़ी चिन्तित थी, पर ये निश्चेष्ट

नहीं थे। इन्होंने दो अच्छे सम्पन्न घरके लड़के ढूँढ़कर अपनी ओरसे बातचीत की तथा यह बताकर कि लड़कियोंकी माँके पास काफी पैसा है, वे बहुत अच्छी तरह विवाह करेंगी, उनके अभिभावकोंको राजी कर लिया। जब यह काम हो गया, तब एक दिन गहनोंके डिब्बे लेकर वे उसके घर पहुँचे। वह इनको पहचानती थी, पतिके मित्र थे। परंतु ये एक बार उसके पतिके मरनेपर, बैठनेको उसके घर गये थे, फिर कभी गये ही नहीं। आज अकस्मात् इनको घर आया जानकर वह सहम गयी। इन्होंने लड़कियोंको बाहर बुलाकर कहा—'बेटी! मुझे तुम्हारी माँसे कुछ बात करनी है। तुमलोग पास बैठी रहो तो मैं उनसे बात करूँ।' लड़कियोंके कहनेसे माँ राजी हो गयी। ये गये—दूरसे प्रणाम किया; क्योंकि वह उम्रमें बड़ी थी। इन्होंने कहा—'माँजी! आप मेरे बड़े मित्रकी पत्नी हो, अतः मेरी माँके समान हो; मेरी बात सुनो!' इतना कहकर इन्होंने सारा हाल बताकर प्रार्थना की—अब यह आपका सोना लगभग पचासी हजारसे ऊपरका है। आप इसे सँभालो और आपकी आज्ञा हो तो इसमेंसे चालीस हजार लगभगका गहना बेचकर दोनों लड़कियोंका विवाह कर दिया जाय। बाकी गहना भी बेचकर रुपये कर दिये जायँ तो उनका ब्याज मैं दूँगा। आपके कोई दौहित्र हो जाय तो उसे गोद ले लेना। लड़कियोंके सम्बन्धकी बात अमुक-अमुकके यहाँ पक्की हो गयी है। अमुक तिथिको टीका दे दिया जायगा।'

लड़कियोंकी माता तो यह कल्पनातीत बात सुनकर मानो दूसरे ही लोकमें पहुँच गयी। उसके तथा दोनों सयानी लड़कियोंके आनन्दका क्या ठिकाना! कन्याकी माताने कृतज्ञताके आँसू बहाते हुए कहा—'भाईजी! मेरे पास शब्द नहीं हैं, मैं आपसे

क्या कहूँ। आपको जैसा जँचे वैसा कीजिये।' गहना बेच दिया गया। अठासी हजार सात सौ रुपये उठे। दोनों कन्याओंका विवाह धूम-धामसे हो गया। सब लोग चकित रह गये। इन्होंने विवाहकी सारी व्यवस्था कर दी, पर स्वयं विवाहमें केवल वैसे ही भाग लिया, जैसे मित्र-बन्धु, नाते-रिश्तेदार लेते हैं। कहीं भी विशेषता नहीं दिखायी। इन्होंने कोई उपकार किया है, यह बात ये किसीसे कहते तो कैसे; घरवालोंको भी पता नहीं लगा। असलमें इनके भले मनमें कोई ऐसी बात नहीं थी कि जिससे ये कहीं उपकार जनानेकी कल्पना भी करते। धन्य! (नाम-पते जानकर ही नहीं लिखे गये हैं।)

—श्रीनिवास गुप्त

विशाल हृदय

मेरे दादाके जीवनमें बना हुआ एक प्रेरक प्रसंग है। सतरहवें वर्षमें मैट्रिक पास करके उन्होंने एक प्राइवेट संस्थामें नौकरी करनेके लिये अर्जी दी। इस जगहके लिये सात-आठ अर्जियाँ आयी थीं, परंतु पहचान तथा सिफारिशके कारण मेरे दादाजीकी नियुक्तिका निश्चय हो गया। इस जगहके लिये मेरे दादाके एक सुपरिचित मित्र भी उम्मीदवार थे और इंटरव्यूमें उन्होंने मेरे दादाजीकी अपेक्षा अपनी अधिक योग्यता भी सिद्ध कर दी थी, पर परिचय-सिफारिशके अभावमें वे नहीं लिये गये। उनको बड़ी जरूरत थी, परंतु उन्होंने कई जगह ऐसा ही कटु अनुभव प्राप्त किया था। इंटरव्यूसे बाहर निकलते ही मेरे दादासे उन्होंने कहा—

'तुमको तो यह नौकरी मिल ही जायगी। परंतु तुम्हें पता है कि मुझे नौकरीकी कितनी अधिक आवश्यकता है, अतः मेरे लिये कहीं दूसरी जगह प्रयत्न करना।'

इनकी परिस्थितिको दादा जानते थे। उन्होंने मनमें कुछ निर्णय करके कहा—तुम्हारे लिये मैं जरूर प्रयत्न करूँगा।'

अपने किये हुए निर्णयको कार्यमें परिणत करनेके लिये दूसरे दिन मेरे दादाने संस्थाके अधिकारी साहेबके पास जाकर अपना निर्णय सुनाया। उसे सुनकर साहेब अचरजमें भर गये और बोले—'ऐसी नौकरी तुम्हें फिर नहीं मिलेगी, तुम अब भी विचार करो।'

'ईश्वरकी कृपासे मैं दो पैसेसे सुखी हूँ। फिर जान-पहचान तथा सिफारिशसे मैं तो और किसी जगह भी नौकरी पा जाऊँगा; परंतु मेरा वह मित्र अभावमें है, उसे इसी समय नौकरीकी खास जरूरत है। फिर मुझे लगता है कि मेरी अपेक्षा वह आपका काम भी अच्छी तरह कर सकेगा।' मेरे दादाने कहा।

परिणामस्वरूप दूसरे दिन मेरे दादाको मिलनेवाला नियुक्तिका आदेश उनके मित्रके हाथमें जा पहुँचा। मित्र तो अपने नामका नियुक्तिपत्र देखकर आश्चर्यमें डूब गये।

मेरे दादाने इस सम्बन्धमें अपने मित्रको कुछ भी जानकारी नहीं होने दी। 'अखण्ड आनन्द'

—'आसोपालव'

तिलकने चोरोंसे बचाया

कुछ वर्ष पहलेकी घटना है। मैं पूनासे नासिक जा रहा था। कल्याण स्टेशनके अगले स्टेशनपर हमारी गाड़ी रुकी, उस समय रात्रिका प्रायः डेढ़ बजा था। मैं बैठा था। गाड़ीने सीटी दी कि तुरंत छः चोर हमारे डिब्बेमें आ घुसे। डिब्बेमें और सब सो रहे थे। केवल मैं ही जाग रहा था। छः चोरोंको देखकर मैं कुछ बोला नहीं और नींदका स्वाँग बनाकर पाटियेपर सो गया। चोरोंने इधर-उधर देखा, फिर वे आपसमें बात करने लगे कि 'इसके माथेपर तिलक है, इसलिये यह कोई साधु-महात्मा होगा। इसको मत छूना।' अतएव उन्होंने मेरा तो स्पर्श ही नहीं किया। न कोई चीज ही ली। मेरी जेबमें उस समय चार हजारके नोट थे। उन्होंने औरोंकी चीजें चुरायीं, पर भगवान्‌का गन्ध (तिलक) मस्तकपर होनेके कारण मेरे हाथ भी नहीं लगाया। इस प्रकार तिलक (वैष्णवके वेष)-ने मुझे बचा दिया। सच्चा वैष्णव होनेपर तो पता नहीं, क्या लाभ होता है।

—रामचन्द्र शिवराम बूव

महात्माकी शान्ति

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है—मैं एम० के० रोड ट्रान्सपोर्टद्वारा बैजनाथसे आ रहा था। मेरे साथ एक सज्जन और थे। वे सिगरेट बहुत ज्यादा पीते थे। जब हमलोग काँगड़ा पहुँचे, तब एक भगवा वस्त्रधारी संत भी मोटरमें आकर बैठ गये। हमारे ही पीछेवाली सीट उन्हें मिली थी। संतजी सिगरेटके धुएँसे कुछ घबरा रहे थे। मेरे साथीसे उन्होंने विनयके साथ कहा कि 'आप यदि सिगरेटका धुआँ बाहरकी ओर फेंकें तो बड़ी कृपा होगी।' साथीने उनके कथनकी कुछ भी परवा नहीं की। महात्माजी शान्त रहे। उन्हें दूसरी सीट भी नहीं मिल सकी। पर उन्होंने मेरे साथीसे कुछ नहीं कहा, धुआँ खूब था। मैं भी बीच-बीचमें कस लगा रहा था । अतः सिगरेटके गंदे धुएँसे दुःखी होकर एक सरदार साहब हम दोनोंपर उबल पड़े। साथ ही कंडक्टरसे भी उन्होंने कहा कि 'गाड़ीमें सिगरेट पीनेवालोंको रोको।' मेरे साथी श्रीलालाजी ऊन खरीदनेके सिलसिलेमें आये थे, काम ठीक तरहसे तय नहीं हो सका था। अतः वे क्रोधमें भरे सिगरेट पी रहे थे और इसपर सरदारजीका बिगड़ जाना तो उन्हें घावपर नमककी तरह काम कर गया। सरदारजी कोई बहुत बड़े मिलिटरी अफसर प्रतीत होते थे, अतः उनपर तो हमारे मित्रका बस चला नहीं। वे बेचारे महात्माजीपर बिगड़कर 'हरामजादे, बदतमीज, मँगते, चोर कहींके, लाल कपड़े पहनकर रोटी माँग खाते, पैसे माँगते, मोटरमें आकर बैठ गये।' आदि दुर्वचन बकने

लगे। संतजी मुसकरा रहे थे। उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। लालाजीने और भी 'बेशरम' आदि कहा, पर जैसे संतजीने कुछ सुना ही नहीं, ऐसे वे चुप रहे। खैर, जिस समय हम पठानकोट पहुँचे, उस समय सभी लोग तेजीसे उतरना चाहते थे। इतनेमें पता नहीं किस तरहसे हमारे साथी लालाजीसे उनका मनीबेग गिर गया। संतजी अन्तमें उतरे होंगे। उन्होंने मनीबेग उठाया और खोलकर देखा तो उसमें लालाजीका छायाचित्र सबसे पहले खानेपर लगा था। महात्माजी जान गये कि बटुआ लालाजीका है। उन्होंने किसीसे कुछ भी नहीं कहा और वे हमलोगोंके पीछे-पीछे तेजीसे चलने लगे एवं आवाज भी लगायी। मैंने मुड़कर देखा कि वे हमारी ही ओर तेजीसे चले आ रहे हैं, एक हाथमें कमण्डलु था और दूसरेमें उनका अपना बेग। मैंने देखा तुरंत ही चार-पाँच शिक्षित सज्जनोंने आकर उनके पैर छुए और उनसे सामान लेने लगे।

उन्होंने अपना बेग एक सज्जनको दे दिया और स्वयं कमण्डलु लिये हमारी ओर बढ़ने लगे। हमलोग भी अब कुछ सोचने लगे कि ये वास्तवमें ही कोई संत हैं। और भी कई लोग इन्हें हाथ जोड़ रहे थे। ये उन्हें उत्तर देते हुए हमारी तरफ आ रहे थे। समीप आते ही मैंने पूछा—'क्या आज्ञा है, महाराज!' संतजीने लालाजीसे पूछा—'आपका मनीबेग आपके पास है या नहीं' लालाजीने जेबमें हाथ डाला और नीचेसे ऊपरतक काँप उठे। महात्माजी फिर बोले, 'क्या था उसमें?' लालाजी सकबकाये बोले—'जी, जी, उसमें लगभग १,७०० रुपये थे, मैं दिल्लीसे आ रहा हूँ, ऊन खरीदनी थी।' महात्माजीने कमण्डलुसे मनीबेग निकालकर लालाजीके हाथपर रख दिया और वे चलने

लगे। रुपये गिने गये तो सौ-सौके सत्रह नोट थे।

लालाजीकी स्थिति विचित्र थी। काटो तो खून नहीं। दौड़कर लालाजीने संतजीके पैर पकड़ लिये। उनके नेत्र भर आये। कहने लगे, 'आप ही स्वामी ×××× हैं। मैंने तो ठीकसे पहले आपकी ओर देखा भी नहीं था। आप अब कृपया मुझे क्षमा करें।' फिर लालाजीने मुझसे स्वामीजीका परिचय कराया।

उनसे सत्संग करनेपर हमलोग समझे कि वास्तविक सच्चा मानव-जीवन तो इनका है। हमारा क्या जीवन है जो दिन-रात व्यर्थके कामोंमें नष्ट हो रहा है। फिर हमलोगोंने प्रतिज्ञा की कि 'आजके बाद चाहे किसी भी रूपमें हो, हम उसे अवहेलनापूर्ण दृष्टिसे नहीं देखेंगे और न किसीका अपमान करेंगे।' श्रीमहाराजजीने परमात्मचिन्तनकी एवं धूम्रपान त्याग करनेकी भी हमसे प्रतिज्ञा करवायी—'धन्य है ऐसी विभूतियोंको।' लाख प्रयत्न करनेपर भी उन्होंने हमारा कुछ भी स्वीकार नहीं किया। कहा कि 'जब आवश्यकता होगी तब देखा जायगा।' केवल बीस मिनटमें ही संतजी चले गये। बीस मिनटके सत्संगने ही हमारे जीवनको बहुत बदल दिया। आज भी मुझे उनकी कुछ बातें याद आ रही हैं एवं उससे परम शान्ति मिल रही है।

—गोपालकृष्ण, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

सहृदयता

बहुत वर्षों पहलेकी बात है। कलकत्तेके एक साधारण व्यापारी रामगोपाल थे। उस समय थोड़े खर्चमें घरका काम चल जाता था, चीजें सस्ती थीं और झूठी शान दिखानेकी लोगोंमें आदत नहीं थी। इसलिये बहुत अधिक पैसोंकी न लोगोंको आवश्यकता थी, न लालसा। रामगोपालकी साधारण दूकानमें खर्च बाद देकर दो-ढाई हजार रुपये सालाना बचत हो जाती थी। इतनेमें ये परम संतुष्ट थे।

एक बार अकस्मात् एक फर्म फेल हो जानेसे इनके बहत्तर सौ रुपये उसमें डूब गये। इनके घरकी पूँजी तो थी नहीं। घरका खर्च चलता ५। और व्यापारमें देना-पावना रहता था। इनको लगभग दस हजार रुपये देने थे, इतने ही लोगोंमें लेने थे। परंतु सात हजारसे अधिक रुपये एक ही साथ डूब जानेसे इनको रुपये देनेके ज्यों-के-त्यों बने रहे। लेने नहीं रहे। इतने रुपये ये महाजनोंको कहाँसे दें। घरमें कुछ गहना था। साध्वी पत्नीने गहना दे दिया—बेचकर ये पाँच हजार रुपये सोनापट्टीसे लाये। एक महाजनके यहाँ भेज ही रहे थे कि इसी बीचमें इनके देशके पड़ोसी एक सज्जन अचानक इनकी दूकानपर आ पहुँचे। ये उनसे कुशल-प्रश्न कर ही रहे थे कि वे बुरी तरह रोने लगे—पूछनेपर उन्होंने बताया कि छोटी लड़कीके ब्याहमें जहाँसे रुपयेकी व्यवस्था की गयी थी, वहाँसे रुपये न आनेसे रुपयोंकी जरूरत पड़ी, समय था नहीं, अतएव बड़ी लड़कीका गहना

बन्धक रखकर रुपये विवाहमें लगा दिये। बड़ी लड़की ससुरालसे आयी हुई थी। अब वह ससुराल जा रही है। उसके ससुरालवालोंको संदेह हो गया है कि गहना इन्होंने अपने काममें ले लिया है। वे आकर बैठ गये हैं। अब उन्हें गहना नहीं दिया जायगा तो इज्जत तो जायगी ही, वे पुलिसकेस करेंगे! लड़कीका जीवन भी अत्यन्त दुःखी हो जायगा। किसी तरह भी पाँच हजार रुपये मिल जाते तो मेरे प्राण बचते।'

पड़ोसीकी बात सुनकर रामगोपालका हृदय द्रवित हो गया! इन्होंने सोचा, मुझसे ज्यादा जरूरत इस समय इनको है और यह सोचकर तुरंत पाँच हजार रुपये उनको दे दिये। उनकी इज्जत बच गयी। उन्होंने गहना छुड़ाकर लड़कीको विदा कर दिया। लड़कीके ससुरालवाले शर्मिन्दा हो गये—सोचा हमने मिथ्या ही भले आदमीपर गरीब होनेके नाते संदेह करके बड़ा पाप किया।

रामगोपालजीको बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। महाजनोंका कड़ा तकाजा शुरू हो गया, परंतु इनके मनमें अपनी सहृदयतापर पूर्ण संतोष था और ये प्रत्येक घोर-से-घोर कठिनाईका सामना करनेको तैयार थे। आखिर इन्होंने देशमें अपने मकानके पासका नोहरा बेचकर काम निकाला। महाजनके रुपये चुका दिये। इनको दुखिया पड़ोसीका इतना हार्दिक आशीर्वाद मिला कि कुछ ही दिनों बाद भगवत्कृपासे इनके डूबे रुपये भी आ गये। कमाई भी अकस्मात् आशातीत हो गयी। दो ही सालमें इनकी स्थिति बहुत अच्छी हो गयी। उधर पड़ोसी सज्जनने भी रुपये पैदा किये। अतएव वे भी रुपये लौटा गये। भलेका अन्तमें फल भला ही होता है। —मदनलाल अग्रवाल

मानस-चौपाईका चमत्कार

मैंने बी० एस्-सी० की परीक्षा पास की थी। घरके सभी लोगोंका आग्रह था कि मैं इंजीनियरिंगमें जाऊँ। आखिर अच्छे नम्बर आनेके कारणसे मेरा दाखिला मैकेनिकल इंजीनियरिंगमें हो भी गया। किंतु दुर्भाग्यवश नेत्रोंकी कमजोरी और शारीरिक दुर्बलताके कारण मैं उसमें नहीं चल सका और अन्तमें हताश होकर डेढ़ महीने बाद मुझे इंजीनियरिंग कॉलेज छोड़ना पड़ा। अब मेरे लिये चारों ओर अन्धकार था। एम्० एस्-सी० के Admission (दाखिले) सब विद्यालयोंमें बंद हो चुके थे। किंतु मेरा दाखिला उदयपुर कॉलेजमें एम्० एस्-सी० (गणित)-में हो गया। चूँकि कॉलेजमें बहुत विलम्बके बाद प्रविष्ट हुआ था, इसलिये अध्ययनमें बहुत कठिनाई पड़ी। काफी मात्रामें कोर्स पढ़ाया जा चुका था। आखिर मैंने अब भगवान्‌का ही सहारा लिया और 'कल्याण'में प्रकाशित एक चौपाईका मानसिक जप करना शुरू कर दिया। 'कल्याण'में तो जपकी बहुत विधि लिखी थी, किन्तु मैंने मानसिक जप ही किया था। इस चौपाईके बारेमें 'कल्याण' में यह भी छपा था कि यह परीक्षामें पास होनेका मन्त्र है। अस्तु, परीक्षाके दिन आ गये। मैंने यथासाध्य अध्ययन भी खूब किया। एम्० एस्-सी० में चार प्रश्नपत्र होते हैं। दूसरे नम्बरका प्रश्नपत्र जो गणितकी एक शाखा Calculus का होता है, इतना कठिन आया कि बहुतसे विद्यार्थियोंने तो श्रेणी बिगड़नेकी आशंकासे आगे परीक्षा ही नहीं दी। वैसे भी

एम्० एस्-सी० (गणित) इतना कठिन विषय है कि विद्यार्थी एक श्रेणीमें दो वर्ष लगाते हैं। मैंने अब ईश्वरको ही एकमात्र सहारा माना और चौपाईका जप करके दोनों अन्तिम प्रश्नपत्रोंको भी दे डाला। वे दोनों काफी अच्छे हुए। जब परिणाम घोषित हुआ, तब विश्वविद्यालयमें सिर्फ करीब ४९ प्रतिशत परिणाम रहा और मेरे नम्बर प्रथम श्रेणीमें थे। मैं तो अपनेको प्रथम श्रेणीका आना उस मन्त्रका ही चमत्कार समझता हूँ। अतः इस अनुभवके आधारपर मेरा विद्यार्थी-वर्गसे निवेदन है कि वे पूरा अध्ययन तो अवश्य करें, पर परीक्षामें कभी हताश न हों और दृढ़ निश्चयके साथ निम्न चौपाईका जप करके परीक्षामें बैठें। ईश्वर उन्हें अवश्य सफलता देगा। चौपाई यह है-

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥

—श्याममनोहर व्यास, बी० एस्-सी०

एकान्तरा ज्वरका सफल यन्त्र

'कल्याण'में मैंने सर्पदंशपर पीपलके पत्तोंका प्रयोग पढ़ा। अत्यन्त प्रसन्नता हुई।*

मैं भी आज एक सफल प्रयोग 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। आशा है, इससे लोगोंका बहुत लाभ होगा।

यह मन्त्र पीपलके पत्तेपर लिखकर दाहिने हाथकी कलाईपर बाँध दे। मंगलवार या रविवारका दिन हो। बस उसी दिनसे कैसा भी कितने दिनका भी अन्तर (एकान्तरा) ज्वर क्यों न हो, नहीं आयेगा। कदाचित् बाँधनेके दिन आ भी गया तो दूसरी पारीसे बिलकुल नहीं आयेगा।

ह्लीं	८	१	६	ह्लीं
	३	५	७	
ह्लीं	४	९	२	ह्लीं

मंगल या रविवारके दिन अगर पारी हो तो उसी दिन बाँधे। पत्तेको पाँचवें दिन खोलकर किसी कुएँमें फेंक दे; किसीका पैर पड़े ऐसी जगह या गंदी जगह न फेंके।

यह प्रयोग हमारे पूज्य पिताजी श्रीराममनोहरजी मिश्र, मु० मढ़ी, पोस्ट—कनैली, जिला इलाहाबादका अनुभूत है। मैंने उन्हींसे सीखा और पचासों एकान्तरावालोंका प्रयोग करके सफलता प्राप्त की।

—दीनबन्धु मिश्र, आयुर्वेदरत्न, पो० सावलीबाघ (वर्धा)

---

* पीपलपत्तोंके प्रयोगसे सर्पका जहर उतर जानेके बहुत-से समाचार मिले हैं।

—सम्पादक

नहरुआकी अनुभूत दवा

निम्नलिखित दवा हमारी भलीभाँति परीक्षित है तथा हजारों-हजारों रोगियोंको इससे पूरा आराम मिल चुका है। 'कल्याण'के पाठकोंके लाभार्थ उसे यहाँ लिखा जा रहा है।

नहरुआ बड़ा कठिन तथा कष्टप्रद रोग है। यह अधिकतर राजस्थानमें हुआ करता है। इसका अचूक इलाज है और हजारों लोगोंपर इसका सफल प्रयोग किया जा चुका है। हमारे यहाँ नवलगढ़में दूर-दूरसे लोग इस दवाको लेने आते थे। दवा यह है— सफेद कलीका चूना (चूना टुकड़ा जो पान वगैरहके काममें आता है)-के बड़े-बड़े अच्छे टुकड़े और असली तिलका तेल—(जितने तेलमें जितने टुकड़े पीसे जा सकें) दोनोंको खरलमें खूब महीन पीस लें, जिससे वह मलहम-जैसी बन जाय। दवा जितनी अधिक घोटी जायगी, उतनी ही अधिक लाभप्रद होगी। दवा लगानेकी विधि यह है—आकका पीला पत्ता लेकर उसपर थोड़ी-सी मलहम लगाकर जहाँ नहरुआका मुँह हो, वहाँ दवा लगाकर उस पत्तेको रखकर ऊपरसे १०-१५ आकके हरे पत्ते रखकर बाँध दें। तीन दिन बाद पट्टी खोलें। ईश्वरकी कृपासे एक ही बारमें पूरा आराम हो जायगा। यदि पूरा आराम न हो तो एक बार फिर इसी तरह दवा लगाकर बाँध दें और तीसरे दिन खोलें। निश्चित ही रोग नष्ट हो जायगा। नहरुआपर पानी न लगने पाये। दवा मुँहपर लगानी चाहिये, ऊपरसे पीला पत्ता और उसपर हरे पत्ते रखे जायँ।*

—वंशीधर अग्रवाल

---

* नहरुआकी एक दूसरी दवा है—आधा पाव कबूतरकी बीटको अच्छी तरह पीसकर एक छटाँक किसी भी चीजके आटेमें मिलाकर

बवासीरकी अचूक ओषधि

रसनामें अनावश्यक आसक्ति बढ़ानेसे बवासीरके सदृश रोगोंकी उत्पत्ति होती है। प्रायः जीर्ण कोष्ठबद्धता (कब्ज)-के कारण गुदाकी त्रिवल्लियोंमें मांसांकुर उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हें मस्से (Piles) कहा जाता है। शौच जाते वक्त इन मस्सोंपर मलकी दबाव-प्रतिक्रिया होनेसे असहनीय दर्द होता है। बैठने-उठनेमें भी कठिनाई रहती है। प्रायः मस्सोंसे रक्त-स्राव होता है। यही बवासीरका भयंकर रूप है। आपरेशन करवा लेनेपर भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये फिर कभी नहीं होंगे।

अतएव यहाँ 'जनहिताय' मस्से (बवासीर)-का एक आध्यात्मिक प्रयोग लिखा जाता है। मस्सा-निवारणका एक मन्त्र है, जो (मारवाड़के) प्रसिद्ध योगी दिवंगत श्रीनवलनाथजी महाराजने स्वामी दयारामजीको प्रदान किया था। तबसे अबतक बहुत-से लोगोंको इस मन्त्रसे शत-प्रतिशत लाभ हुआ है। मन्त्र इस प्रकार है—

चूल्हेपर पानीमें पकाया जाय। पकते समय उसमें आधा छटाँक शुद्ध तिलका तेल डाल दिया जाय। फिर जब वह पूरी तरह पक जाय तो उतारकर किसी कपड़ेपर रख लें और ठण्डा होनेके बाद घावपर बाँध दें। तीन ही दिनमें नहरुआ ठीक हो जायगा।

—पीरामल

'ईशम ईशो ईशाम, कंकर को न करो ललिशाम्।
आठों अच्छर जो नित जोय मूल बवासीर होय न होय॥'

प्रयोग-विधि—गुदा धोते समय इस मन्त्रको मन-ही-मन गुनगुनाया जाय। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक कुछ दिन ऐसा करनेसे, चाहे जैसा भी भयंकर खूनी बवासीर क्यों न हो, निश्चितरूपसे आराम होता है। इसके साथ ही खाद्य-अखाद्यका ध्यान अवश्य रखना चाहिये।*

—सुन्दरलाल बोहराद्वारा—श्रीमदनलालजी रंगा, गुलाबसागरका ओटा, जोधपुर

---

* हमलोगोंने इसका प्रयोग करके परीक्षा नहीं की है। बहुत सीधा निर्दोष प्रयोग है। पीड़ित भाई प्रयोग करके देखें और जो फल हो, उसकी कृपया सूचना दें।

—सम्पादक

बुराईके बदले भलाई—हृदय-परिवर्तन

वर्षों पहलेकी बात है। बाबू रामानन्दके बगलमें ही एक सोनारका घर था। सोनार बहुत अच्छा आदमी था, उसकी पत्नी भी साध्वी थी, पर पता नहीं, क्यों बाबू रामानन्दको सोनारके प्रति द्वेष हो गया था। वे चाहे जिससे उसकी निन्दा करते। कोई भी गहना बनवाने आते तो रामानन्द उसकी बेईमानी-चोरी बताकर उसमेंसे कइयोंको लौटा देते। पर वास्तवमें सोनार बड़ा ही ईमानदार था। इससे उसकी बहुत अच्छी साख थी। रामानन्दके विपरीत प्रयत्नपर भी उसको बहुत काम मिलता। उसकी लड़कीका ब्याह था। पड़ोसीकी सहायता करना तो दूर रहा, रामानन्दने अपने दुष्ट स्वभाववश विवाहमें भी कई तरहके विघ्न डाले। बरातियोंका अपमान कराया। उन्हें भड़काया भी। विवाह किसी तरह हो गया। पर सोनारने न कुछ बुरा माना, न रामानन्दका प्रतिकार किया और रामानन्दके साथ व्यवहारमें भी कहीं रूक्षता-कटुता नहीं आने दी। वह वैसे ही विनम्र तथा निश्चल बना रहा। एक दिन रामानन्दने कुछ दे-लेकर गुंडेके द्वारा राह चलते सोनारको गालियाँ दिलवायीं और उसे मरवाया। उसके घर तथा दूकानपर एक दिन गंदा कूड़ा गिरवा दिया। इस तरह अपनी ओरसे रामानन्दने सोनारको नुकसान तथा कष्ट पहुँचानेमें कोई बात उठा नहीं रखी। पर सोनार सहज ही शान्त रहा।

एक रात्रिकी बात थी, रामानन्द कहीं बाहर गया हुआ था।

घरमें उसकी स्त्री तथा बालक अकेले थे। चोरोंने सुअवसर देखकर रामानन्दके घरमें सेंध लगायी। वह धनी था। हजारों रुपये नकद उसके घरमें रहते और गिरवी रखा हुआ तथा अपना हजारों रुपयेका गहना भी उसके घरमें था। ठीक उसी समय सोनारकी पत्नी जाग गयी। उसने पतिको जगाया। तबतक सेंध लगाकर एक चोर अंदर घुस गया था। दो बाहर खड़े थे। उजियाली सुनसान रात थी। माल भी बाहर निकाल लिया था। नकद रुपये तथा बहुत-सा गहना था। वे भागना ही चाहते थे। सोनारने जाकर चोरोंको ललकारा। चोर वहींके जान-पहचानके थे। सोनार उन्हें पहचानता था। उन्होंने सोनारसे कहा—'तुमको तो हमारी सहायता करनी चाहिये। तुम्हें कितना रुलाता तथा कष्ट देता रहता है यह नीच रामानन्द। आज वह घर नहीं है, हमलोग सब माल-मता ले जायँगे तो उसका मिजाज ठंडा हो जायगा तथा वह सीधा हो जायगा। तुम्हारे लिये तो यह खुशीकी बात है।' सोनारने कहा—'भाई! ऐसा नहीं हो सकता। हमलोगोंका आपसमें पुश्तैनी भाईचारेका सम्बन्ध है। क्या हुआ, जो भूलसे हमें वह कुछ कह-सुन लेता है; आखिर है तो हमारा पीढ़ियोंका पड़ोसी भाई ही। जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, मैं अपने देखते-जानते भाई रामानन्दका तनिक-सा भी नुकसान नहीं होने दूँगा।' चोरोंने छुरा निकालकर कहा—'बड़े धर्म पालनेवाले आये हो, हट जाओ यहाँसे, नहीं तो अभी काम तमाम हो जायगा।

सोनारकी स्त्री इस बीचमें उठकर कुछ ही दूरपर एक धनी सज्जन हरचन्दरायका घर था, उसमें रातको पहरा लगा करता था, वहाँ पहुँच गयी और पहरेदारको प्रार्थना करके तुरंत थानेमें खबर करवा दी। मुहल्लेमें और लोग भी जग गये। सोनारकी

स्त्रीके उद्योगसे यह सब हो गया। थानेसे पुलिसके सिपाही चले और मुहल्लेके लोग भी। इधर चोर छुरा मारनेको तैयार हुए ही थे कि सिपाही तथा और लोग समीप आ गये। चोर माल लेकर भागे। सोनारके रोकनेपर एक चोरने सोनारको छुरा मारा, पर वह भाग रहा था। सोनारने बायाँ हाथ सामने किया तो उसकी हथेलीपर कुछ चोट लगी। इतनेमें पुलिस तथा लोग आ गये। तीनों चोर मालके साथ रँगे हाथों पकड़ लिये गये। रामानन्दकी स्त्री यह सब देख रही थी। मुहल्लेके लोग सोनारका यह पवित्र भाव तथा महान् कार्य देखकर दंग रह गये। सब उसकी प्रशंसा करने लगे। सभी जानते थे कि रामानन्द वर्षोंसे निर्दोष सोनारको बेहद सता रहा था। उन्होंने उसकी स्त्रीसे कहा—'देखो, अपने पतिकी काली करतूतपर विचार करो और इस सोनारका भला काम देखो। छुरा कहीं भी लग सकता था और इसकी जान भी जा सकती थी। पर इसने तुमलोगोंको अपनी जान देकर भी बचाना चाहा और दोनों स्त्री-पुरुषने मिलकर आखिर बचा ही लिया।' रामानन्दकी पत्नी रो रही थी अपने काले कारनामोंको याद करके और सोनार-दम्पतिका अनोखा त्याग तथा प्रेम देखकर। पश्चात्तापके आँसुओंने उसका सारा कलुष धो दिया।

दूसरे दिन रामानन्द लौटा। पत्नीने सारा हाल बतलाया। मुहल्लेके लोगोंने तथा पुलिसने भी बतलाया। रामानन्दका हृदय पलट गया। उसके हृदयका सारा विष सोनार-सोनारिनके विलक्षण स्नेहामृतसे नष्ट हो गया! वह जाकर सोनार-सोनारिनके चरणोंमें पड़ गया। उनसे रो-रोकर क्षमा माँगी, पर उनके मनमें तो कोई द्वेष था ही नहीं। उन्होंने रामानन्दको सरल हृदयसे सान्त्वना दी।

केस चला। चोरोंने अपने बयानमें सोनारके कर्तव्य-पालन, त्याग, रामानन्दके प्रति उनके सद्भाव तथा सोनारकी ठीक समयपर काम करनेवाली बुद्धि तथा बहादुरीकी बातें बतायीं। मैजिस्ट्रेटने सोनार-सोनारिनकी बड़ी प्रशंसा की। चोरोंको सजा हुई। सोनारको सरकारने इनाम देना चाहा। पर सोनारने यह कहकर नहीं लिया कि 'रामानन्द मेरा भाई है। मैंने उसपर कोई उपकार थोड़े ही किया है। अपने घरको बचानेकी चेष्टा करनेमें उपकार-पुरस्कारकी कैसी बात। मैं यह न करता तो मैं कर्तव्यसे गिरता। किया तो अपने स्वार्थका काम किया—।' सब लोग दंग रह गये। रामानन्द तो उसका चरणसेवक ही बन गया। परस्पर प्रेमका प्रवाह बह चला।

—हरिप्रसाद शर्मा

प्रतिशोध

हमारे मकानमें नहर-विभागके पं० × × × × शर्मा रहते हैं। उनसे मैंने यह घटना सुनी है। आपने बतलाया कि मैं जैगारा चौकीपर पतरौल था। जब मैं एक दिन राजबाहा जाजऊ (जि० आगरा)-पर जा रहा था तो मुझे एक साधु पुलपर बैठे मिले। प्रणाम करनेके पश्चात् मैं उनके पास बैठ गया; न जाने क्यों वे महात्मा मुझसे बातें करने लगे। इसी समय मैंने उनसे उनके साधु होनेका कारण पूछा—तो उन्होंने काफी आग्रह करनेपर निम्न शब्दोंमें बतलाया—

'मैं कलकत्तेका एक महाजन था। मैं अपनी छोटी बहिनके साथ, जो उस समय १७ वर्षकी थी, एक अंधकारमय छोटे मकानमें रहता था। खोमचेका काम करनेपर मैं इतने थोड़े पैसे कमा पाता था कि उदरपूर्ति नहीं होती थी। जीवन दुःखी तथा संकटमय था।'

'भगवान्‌की लीला अद्भुत है।' एक रात्रिको जब हम दोनों भाई-बहिन सोनेवाले ही थे कि एक पंजाबीने मकानमें प्रवेश करते हुए रात्रिनिवासकी अनुमति माँगी। पर्याप्त अनुनय-विनयके पश्चात् हमने उसे स्वीकृति दी और तीनों उस तंग मकानमें सो गये तथा स्वप्नोंके संसारमें पहुँच गये। लगभग रात्रिके ११ बजे मेरी बहिनने मुझे जगाया और नोटोंका बंडल देकर कहा—'मैंने इस सम्पत्तिको उस अतिथिको मारकर प्राप्त किया है, जिससे कि हमारा जीवन सुखमय व्यतीत हो सके।'

यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, परंतु पुलिसके भयसे मैंने शीघ्र ही एक गहरा गड्ढा खोदा और पंजाबीकी लाशको उसमें रखकर मिट्टीसे दबाकर अदृश्य कर दिया। इसके अतिरिक्त चारा ही क्या था।

'शनैः-शनैः उस सम्पत्तिसे मेरा कारोबार बढ़ा और मैं एक अच्छा व्यापारी हो गया। मेरी बहिन, इससे पहले कि मैं उसका विवाह कर पाता, स्वर्ग सिधार गयी। परंतु अवस्था अधिक होनेपर भी मेरा विवाह हो गया और पुत्र भी उत्पन्न हुआ। कालान्तरमें मेरी पत्नी भी चल बसी।

'भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध होनेके कारण मेरा पुत्र (जो मेरी एक कल्पनामात्र था) दूजके चन्द्रमाकी तरह विकसित होने लगा। नवयुवक होनेपर मैंने उसका एक धनी परिवारकी सुशीला लड़कीके साथ विवाह-संस्कार कर दिया। परंतु विवाहके दो वर्ष पश्चात् मेरे पुत्रको रोगने इस प्रकार आ घेरा कि मैं उसकी चिकित्सा कराते-कराते सम्पूर्ण संचित धन-सम्पत्तिसे हाथ धो बैठा, मकान भी दूसरोंके हाथोंमें चला गया। परंतु बीमारी कम न हुई। निराश हो एक दिन मैं पुत्रके पास बैठकर आँसू बहाने लगा। पुत्र हँसा और बोला—'क्या अब आपके पास कुछ भी नहीं रहा है? तो मैं इस संसारमें कल नहीं रहूँगा।' मैंने प्यारसे पूछा—'बेटा! ऐसा क्यों.......तथा यह नवयुवती वधू मेरे सामने विधवा होकर रहेगी तो मैं कैसे सहन.......।' कहते-कहते मेरा गला रुँध आया। लड़केने कहा—'मैं वही पंजाबी हूँ जिसका कत्ल आपकी बहिनके हाथ हुआ था तथा मेरी यह पत्नी आपकी वही बहिन है। अब मैं इस संसारसे इसका लोक तथा परलोक बिगाड़कर मुख मोड़ता हूँ।

मैंने अपनी सम्पत्ति इलाजके रूपमें खर्च कराके वसूल पायी और आप पहलेकी भाँति निर्धन हो गये।'

'मुझे उसकी बातोंपर आनेवाले कल ही विश्वास आ गया, जब कि मेरा बेटा मुझे तथा पत्नीको संसारमें दीन तथा नि:सहाय बनाकर संसारसे चल बसा। मुझे प्रेरणा मिली। अतः मैंने गृह त्यागकर ईश्वरकी शरण ली और अब भगवद्भजनमें समय बिता रहा हूँ। अब मेरी अवस्था ९५ वर्षकी हो गयी है। यही है मेरे साथ पंजाबीका प्रतिशोध तथा मेरे साधु होनेका कारण।'

यह साधु श्रीशर्माजीको दिसम्बर ५७ में मिला था। काफी आग्रह करनेपर भी साधुने नाम-पता अज्ञात ही रखा। अब ज्ञात नहीं वह साधु जीवित है अथवा नहीं।

—ओमप्रकाश चौहान

छोटी-सी लड़कीकी समयसूचकता

मेरे मित्रके पिताजी एक बार कलकत्तेसे बम्बई आनेके लिये हबड़ा मेलमें सवार हुए। उस समय जो घटना हुई, उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ लिख रहा हूँ—

मैं कलकत्तेसे बम्बई जाते समय हबड़ा मेलमें सवार हुआ। सारी गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। ठीक समयपर गाड़ी खुल गयी। बरसातका मौसम था। बहुत वर्षा हो रही थी। पर गाड़ी इसकी चिन्ता किये बिना ही दौड़ी चली जा रही थी।

अचानक इंजिन-ड्राइवरकी दृष्टि दूर हवामें हिलती हुई लालटेनपर पड़ी। उसे कुछ जोखिमकी निशानी प्रतीत हुई। गाड़ी धीमी हुई, स्टेशन नहीं था पर गाड़ी खड़ी हो गयी। यात्रियोंने बाहर मुँह निकाले। इंजिनवाले तथा बहुत-से यात्री उतरकर दूर जहाँ लालटेन दीख रही थी, जा पहुँचे। देखा तो एक दस वर्षकी लड़की हाथमें लालटेन लिये खड़ी थी।

लोगोंने पूछा—'बेटी! क्या बात है; गाड़ी क्यों रुकवायी?' उसने कहा—'देखो, आगे पुल टूट गया है। मेरे पिताजीको इस समय बुखार आनेसे वे सिग्नल नहीं दे सके, इससे उनके बदले मैंने आकर लालटेन दिखाकर गाड़ी रुकवायी।'

इस बातको सुनकर सभीने लड़कीकी बहादुरी तथा कर्तव्य-पालनके लिये उसे शाबाशी दी। तदनन्तर फर्स्टक्लासमें बैठे हुए एक डॉक्टरने जाकर उसके पिताके इलाजकी व्यवस्था की और गाड़ी वापस कलकत्ते लौटी। 'अखण्ड आनन्द'

—नलिन० सी० बकर

'गजेन्द्र-स्तवन'से संकट-मुक्ति

आजके कई वर्ष पूर्व एक दिन मुझे 'मालवीयजी महाराजके द्वारा प्रशंसित लेख' गीताप्रेस, गोरखपुर-मुद्रणालयसे मुद्रित गजेन्द्रस्तवनका मिला, जिसमें महान् संकटसे त्राण पानेकी प्रशंसा की गयी थी। मैंने भी लिखे मुताबिक उसे अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लिया, इसलिये कि विपत्ति-कालमें इसकी शक्ति देखूँगा। प्रभुकी इच्छासे थोड़े दिनों पूर्व मैं संकटमें फँस ही तो गया। तब इस महान् अस्त्रका चार बजे रात और निरन्तर हृदयसे उच्चारण करके प्रयोग किया। मुझे संकटसे छुटकारा मिलनेकी आशा नहीं थी, परंतु आखिरकार मैं इस स्तवनके प्रतापसे संकटसे मुक्त होकर प्रसन्न हूँ।

—रामायण पाण्डेय

दाद-खाजकी अनुभूत दवा

मूलीका बीज पानीमें पीसकर आगपर खूब गरम कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उस स्थानपर, जहाँ दाद-खाज हो, खूब गरम-गरम लगा देना चाहिये। पहले दिन तो मूलीका बीज खूब लगेगा और मरीजको थोड़ा कष्ट भी होगा; किंतु याद रखना चाहिये कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना ही अधिक फायदा होगा। दूसरे दिन भी यही प्रयोग करना चाहिये। दूसरे दिन पहले दिनकी अपेक्षा कम तकलीफ होगी और इसी प्रकार तीन-चार दिनोंके प्रयोगसे दाद-खाज, चाहे जैसा भी पुराना हो, जड़से आराम हो जायगा। यह मेरी अनुभूत दवा है। आशा है, पाठक एवं पाठिकाएँ इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे।

—जयकान्त झा, प्रधान लिपिक, हरिश्चन्द्र कॉलेज, वाराणसी

भला ऊँटवाला

कुछ पुरानी बात है। राजस्थानमें उस समय ऊँट चलते थे। कलकत्ते, बम्बईसे आने-जानेवाले लोगोंको पचासों कोस ऊँटोंपर यात्रा करके रेल पकड़नी पड़ती थी। एक भाई कलकत्तेसे लौटे और उन्होंने नावाँ (कुचामन रोड)-में एक अपरिचित ठाकुरका ऊँट भाड़े किया। बीमारीके कारण अचानक विचार हो गया, इससे जल्दीमें आना पड़ा था, इसलिये अपने घरको समाचार लिखकर परिचित व्यक्तिका ऊँट वे नहीं मँगा सके थे। दो लड़कियोंके विवाहके लिये कपड़ा-लत्ता, गहना तथा नगद सात हजार—कुल पन्द्रह हजारका सामान साथ था। सामान ऊँटके बोरेमें रखा गया। उसपर वे भाई सवार हुए। उन्हें तीन दिन सफर करके घर पहुँचना था। पहली पन्द्रह कोसकी मंजिल तो ठीक निभ गयी। वे लोसलमें आकर ठहरे। वहाँसे दूसरे दिन चले। गरमीका मौसम था, इसलिये रातको ऊँटकी यात्रा की जाती थी। दैवकी लीला। रास्तेमें उनके पेटमें भयानक दर्द उठा, समीप एक छोटे-से गाँवमें पेड़के नीचे ऊँट ठहराया गया। वे भाई उतरे। वहाँ रातको कहाँ कोई वैद्य मिलता। उनके पास लौंग थी, ऊँटवालेने आगका प्रबन्ध करके लौंगका काढ़ा बनाकर दिया। परंतु दर्द बढ़ता ही गया और इसी दर्दमें दो-तीन घंटे बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। गाँववाले बड़े अच्छे लोग थे। सबने सहायता की! वहाँसे एक ऊँट लेकर गाँवका आदमी साथ चला और उनके सामानवाले ऊँटपर उनकी लाश बाँधी गयी।

ऊँटवालेसे गाँवके एक आदमीने कहा—कुछ माल-ताल पास हो तो लेकर चम्पत क्यों नहीं हो जाता। लाश फूँककर घर चला जा।' उसने कहा—'भाई! ऐसी बात मनमें लाना भी पाप है। इन्होंने मुझपर विश्वास करके अपना हजारोंका मालमता तथा अपनी जान मेरे भरोसे छोड़ दी। ये तो मर ही गये। अब इनके सामानको लूटकर मैं इनके घरवालोंको भी मार दूँ। भगवान् सब देखते हैं। वे मेरे इस पापको कैसे सहन करेंगे। मुझे भी बड़ा दुःख है, तुमने ऐसी पापकी बात मुझसे कही ही कैसे, तुम्हारे मनमें यह पाप-भावना पैदा ही क्यों हुई और मैं इसे सुन भी कैसे सका। मालूम होता है मेरे मनमें कहीं जरूर कोई पाप छिपा है, तभी तुम मेरे सामने ऐसी पापकी बात कह सके और तभी मैं सुन सका।'

गाँववालोंने यह सुनकर ऊँटवालेकी बड़ी सराहना की और उस आदमीको धिक्कारा। लाश उनके घर पहुँची। घरवालोंके दुःखका पार नहीं रहा, पर जब कीमती सामान तथा नकद रुपयोंकी थैलियोंको ज्यों-का-त्यों पाया, तब उनके शोकमें भी एक हर्षकी लहर उठी। उन्होंने ऊँटवालेके प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रकट की, उसे इनाम देना चाहा। पर उसने भाड़ेके सिवा एक पैसा भी अधिक नहीं लिया और कहा कि मेरे साथ यह जो गाँवका एक भाई आया है, इसको भले ही कुछ दे दिया जाय। पर उसने भी लेनेसे इन्कार किया। पड़ोसीके यहाँ रोटी-राबड़ीकी व्यवस्था की गयी। उसीको खाकर दोनों विदा हो गये। धन्य!

—चेतराम शर्मा

पढ़ाईकी लगन

एक दिन सबेरे साढ़े दस बजे अंदाज मैं बम्बईके सेंट जेवियर्स कॉलेजके पाससे जा रहा था। कॉलेजके बाहर दरवाजेके पास दो नौजवान विद्यार्थी बात कर रहे थे। उनमेंसे एकने मेरी ओर देखा और हँसता हुआ मेरे पास आकर मुझसे बोला— 'नमस्ते भाई! पहचानते हो या भूल ही गये?'

मैंने उसको अच्छी तरह देखा और मेरी स्मृति पूरे पाँच वर्ष पीछे पहुँच गयी। मैं बोल उठा—'अरे, १९५५ में हरद्वारमें हमलोग साथ थे, वह चन्द्रकान्त तो नहीं हो?'

'हाँ वही! हरद्वारमें अपने अगल-बगल ही ठहरे थे, फिर वहाँसे साथ ही देहरादून तथा मंसूरी गये थे'—उसने उत्तर दिया।

मुझे याद आ गया—उस समय वह किशोर चन्द्रकान्त आज जवान हो गया है। उस समय तो यह हाई स्कूलके अन्तिम वर्षमें पढ़ रहा था।

फिर तो चन्द्रकान्त मुझसे बहुत-सी बातें कह गया। मेरे कुटुम्बके लोग हरद्वारमें मेरे साथ थे, उन सबके कुशल-समाचार पूछे और अपने कुटुम्बके समाचार बताये। फिर अचानक अपनी घड़ीकी ओर देखकर बोला—'दादा! क्षमा करना, मैं जरा इकोनोमिक्सका पेपर लिख आऊँ। तुमसे फिर मिलूँगा।' इतना कहकर वह हँसता हुआ कॉलेजकी ओर चला।

''जरा पेपर लिख आऊँ', इस 'जरा' शब्दपर जोर देकर मैं उससे पूछ बैठा।'

'हाँ, मेरी फाइनल बी० ए० की परीक्षा चल रही है। मैं यहाँ पेपर ही देने आया हूँ।' 'तो क्या तुम्हें परीक्षाकी चिन्ता नहीं है? दूसरे विद्यार्थियोंकी भाँति तुम अन्तिम घड़ीतक अध्ययन नहीं करते? क्या 'नर्वस' नहीं हो जाते? या फिर पास ही नहीं होना है, जो कहते हो जरा पेपर लिख आऊँ।' मैं एक ही सपाटेमें इतने प्रश्न पूछ गया।

'नहीं दादा! मैं परीक्षाकी चिन्ता नहीं करता। वर्षके आरम्भमें ही मैं ध्यानपूर्वक लग जाता हूँ। परीक्षाके समय तो खूब आरामसे सोता हूँ और आनन्दमें रहता हूँ तथा हँसी-खेलमें ही पेपर लिख आता हूँ। इतनेपर भी तुम्हारे-जैसे बड़ोंकी दयासे प्रतिवर्ष अच्छे नम्बरोंसे ही पास होता आ रहा हूँ। इतना कहकर एक मोहक हास्य बिखेरता हुआ, 'फिर मिलना' कहकर मेरी ओर हाथ हिलाता हुआ वह कॉलेजकी ओर दौड़ गया।

'जरा पेपर लिख आऊँ'—ये शब्द मेरे दिमागमें रम गये। हमारा अधिकांश विद्यार्थीसमूह तो पूरा वर्ष भटकता हुआ मौज-शौक और उलटी-सीधी प्रवृत्तियोंमें ही बिता देता है। फिर परीक्षाके समय रातों जागकर स्वास्थ्य बिगाड़ता है और परीक्षाके दिन तो 'नर्वस' हो जाता है, 'टीप्स' के लिये इधर-उधर दौड़-धूप करता है। अन्तके पाँच मिनटतक भी पुस्तक नहीं उतारता और इतनेपर भी अच्छा परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता। हमारे ऐसे विद्यार्थी चन्द्रकान्तके उदाहरणसे शिक्षा लेकर शुरूसे ही अभ्यासमें नियमित रूपसे लग जायँ' और हँसी-खेलमें धीरेसे कहें कि 'जरा पेपर लिख आऊँ' तो कैसा अच्छा हो।—

(अखण्ड-आनन्द)

गोपालदास

श्रद्धा-विश्वासका फल

बात १९५५ की है। तब मैं कोटामें रहता था, हमारे पड़ोसमें ही एक कृष्णा नामकी विधवा स्त्री रहा करती थी। आँखें मुँदी-मुँदी, श्वेत वस्त्र धारण किये वह साध्वी एकदम ज्योतिर्मयी साधना-सी ही प्रतीत होती थी। वह मुझे भगतजी कहा करती थी। न जाने क्यों, मुझ-जैसे अधमके लिये ऐसा सम्बोधन! पर खैर, एक बार उसका इकलौता बेटा बीमार पड़ा, सख्त बीमार। घरमें उसकी माँ, वह और उसका पुत्र तीन ही थे। माँको कार्यवश किसी विवाहमें जाना था। अतएव वह उसे दवा देकर यह कहकर चली गयी कि हर दो घंटेसे दे देना। मैंने कहा—'घरपर मैं रह जाऊँगा' पर कृष्णाने कहा—'नहीं, आप कष्ट न करें, जब आवश्यकता होगी, मैं आवाज दे लूँगी।' मैं घर आ गया, माँ चली गयी। प्रमोद बुखारसे जल रहा था, वह कुछ देर तो बैठी रही, फिर एकाएक उठकर प्रभुके सिंहासनके पास गयी और सिंहासन लेकर छतपर आ गयी तथा चरणोंमें लिपट गयी और आर्तकण्ठसे पुकार करने लगी। वहीं उसे नींद आ गयी। प्रातः ६ बजे मैं उनके घर गया। उसी समय उसकी माँ आ गयी, पर कृष्णा दिखायी न दी। हम ऊपर गये तो वह सोयी थी। उसकी माँने जगाया, पूछा—'क्यों दवा दे दी थी न प्रमोदको?' 'नहीं माँ।' माँने डाँटा—'एक तो बेटा है और तू नेह नहीं रखती, हे भगवन्! जाने वह जिंदा भी है या नहीं।' उसने उसे बहुत कुछ बुरा-भला कहा। उसने कहा—'माँ! रखनेवाला तो वह है, मेरे

जतन करनेसे क्या होता है,' और वह दौड़ पड़ी अपने पुत्रके पास। हम सब गये तो प्रमोद सो रहा था और बुखार नाममात्रको भी नहीं था। भगवान्ने बुखार चुरा लिया था। वह दौड़कर ठाकुरके पास गयी और चरणोंसे लिपट गयी। सारा सिंहासन आँसुओंसे तर हो गया। उसके बाद जबतक मैं वहाँ रहा, मैंने देखा उसका सिर भी नहीं दुखा और अब तो उस प्रमोदका विवाह भी हो गया है।

—'कुन्दन'

सच्ची साधुता

गत १९५७ अप्रैलकी बात है। संत श्री.........अपने साथ अपने अन्य भक्तजनोंको और मुझको लेकर चारों धाम-यात्राके लिये गये थे। श्रीजगन्नाथजीके दर्शनोपरान्त हम कलकत्तासे हरद्वारका सीधा टिकट लेकर हबड़ा स्टेशनसे देहरादून एक्सप्रेसमें हरद्वार-हबड़ाके डिब्बेमें जाकर बैठे। गाड़ी चल पड़ी। डिब्बा पूरा भरा हुआ था, सभी लम्बी सफरवाले मुसाफिर थे। यद्यपि डिब्बा १७ आदमियोंके लिये था, पर उसमें सब ५४-५५ यात्री थे। ऊपरकी सीटें भी सामानसे भरपूर थीं। नजदीक उतरनेवाला कोई न था।

जब मुरादाबाद स्टेशन आया, तब वहाँसे दो यात्री तरुण दम्पति सुविधाजनक डिब्बा ढूँढ़ते हुए हमारे डिब्बेके पास आये, त्यों ही गाड़ीने छूटनेकी सीटी दी। उन्होंने उकताये हुए हमारे डिब्बेकी खिड़कीमें शीघ्रतासे बिस्तरा ढकेला और स्त्रीको उठा उसी खिड़कीसे डिब्बेमें उतारा। नीचे लोग बैठे थे। बिस्तरा और स्त्री उनके ऊपर जा पड़े। वे स्वयं भी खिड़कीसे घुसकर चढ़ गये; गाड़ी चल पड़ी। हमलोगोंने उनसे कुछ भी नहीं कहा; क्योंकि हमें तीर्थयात्राके नियमोंका पालन करना आवश्यक था। यात्रामें क्रोधादि नहीं करना चाहिये। अतः हमारी मण्डली धर्मव्यवस्थित थी। बड़ी भीड़ थी। कहीं भी जगह नहीं थी, बिस्तर ऊपर पड़नेसे लोगोंने उनसे बिस्तरा हटानेके लिये कहा। नवयुवकने उसे उठा लिया। नवयुवक थक चुके थे। संत श्री.........उनकी स्त्रीको अपनी जगह बैठनेको दे दी। वे स्वयं ज्यों ही खड़े हुए कि नवयुवकने बिस्तरा संतजीके सिरपर रख दिया। मैंने उनको ऐसा न करनेके लिये कहा, इसका परिणाम विपरीत हुआ। नवयुवकने धक्का-मुक्की की। अब बिस्तरपर

अपना और सामान भी संतजीके सिरपर रख दिया। लोगोंने हटाया। नवयुवकको समझानेकी चेष्टा की, पर विवाद बढ़ता ही गया। गाड़ी कुछ घंटोंमें हरद्वार जा पहुँची। सभी उतरे। शान्त-मूर्ति संत श्री..........प्लेटफार्मपर उतरे। सभीने अपना-अपना सामान सँभाला। नवयुवक सपत्नीक नीचे खड़े थे। संतजीने पूछा—'कहो भाई! कुछ सेवा है?' वे दम्पति चिन्तित थे; क्योंकि उन्होंने गाड़ीमें हड़बड़ाहटमें टिकट कहीं गिरा दी थी। पता नहीं था कहाँ गिरी। हमारा डिब्बा हरद्वारतकका ही था, अतः वह काटकर इंजनद्वारा खींचा जा रहा था।

नवयुवकने कहा—'महाराज! टिकट खो गया।' संतजीने कहा—'भाई! अच्छी तरह तलाश करो।' नवयुवकने कहा—'तुमने ही टिकट ली है, दे दो, नहीं तो पुलिसके हवाले करूँगा?' संतजीने कहा—'भले ही; परंतु आपको याद है कि टिकटें कहाँतक थीं और कब-कहाँ खोयीं?' लोग सुन रहे थे। किसीने कहा—डिब्बेमें तो गिरी नहीं?' मुझसे रहा न गया, मैंने कहा—'भले आदमी संतजीने तुम्हें जगह दी, बिस्तर उठाया, भला-बुरा सुना और परिणाममें यह अपराध लगा रहे हो?'

हमारी बातचीत हो ही रही थी, इसी बीच संतजी उक्त डिब्बेकी तलाशमें गैरेजकी ओर गये, जहाँ डिब्बा काटकर छोड़ा गया था। उस डिब्बेमें दो-तीन आदमी बैठे थे जो रेलवे-कर्मचारी थे, जो इंजनके साथ डिब्बे जोड़ने-छोड़नेका काम करते हैं। उनसे संतजीने पूछा, उन्होंने तलाश की। ढूँढ़नेपर टिकटें मिल गयीं, संतजी उनको ले आये।

मैं उन नवयुवकसे कह रहा था—'भाई! किसी सज्जन व्यक्तिपर यों लांछन लगाना उचित नहीं है।' काफी लोग इकट्ठे हुए थे, संतजीने लाकर टिकटें दीं और डिब्बेमें गिरनेकी

बात बतायी, फिर कहा—'और कुछ सेवा हो तो कहें! हमें श्रीबद्रीनारायण जाना है। २-३ दिन हरद्वारमें रहेंगे। हमारा पता 'श्रीसुदर्शन आश्रम, स्टेशन रोड, हरद्वार है।' वे रिक्शामें बैठे, चले गये और हम सुदर्शन आश्रममें जा टिके।

दूसरे दिन वैशाखी स्नान बड़े समारोहसे हो रहा था। रास्तों, घाटों और स्नानस्थलोंपर पुलिसकी व्यवस्था थी। आने-जानेके लिये अलग-अलग रास्ते नियत थे। हम आश्रमसे सुबह ९ बजे स्नानार्थ हरकी पैड़ी जा रहे थे, तो आगे रास्तेमें ऋषिकेश क्रॉस-रोडपर वही नवयुवक अकेले ही मिले। संतजीने पूछा—'कहो महाशयजी, कुशलपूर्वक हो न?' नवयुवकने कहा—'क्या बताऊँ, एक आपत्ति हो तो कहूँ—नृसिंहभवनमें ठहरनेके लिये कोठरी नहीं मिली, वहीं बाहर ही पड़े हैं। स्त्रीको रातसे गुर्दा-दर्द (आन्त्रिक वृक्कशूल) हो गया है। बड़ी बेचैनी है। मैं थैला ले स्नानको हरपैड़ीपर गया था, वहाँ थैला ही कोई उठा ले गया। उसीमें पैसे थे। बड़ा परेशान हूँ।'

संतजीने कहा—'तो कुछ सेवा करूँ?' नवयुवकने दस रुपयेकी याचना की। संतजीने झट निकालकर दे दिये और मुझको आदेश दिया कि 'आप इनके साथ जायँ, स्त्रीकी योग्य चिकित्सा करें।' मैंने आदेशानुसार उन नवयुवकको साथ लेकर सुदर्शन आश्रमसे अपनी दवाकी पेटी ली और फिर नृसिंहभवनमें उनकी स्त्रीको अच्छी तरहसे देखा। उन्हें इंजेक्शन दिया और गोलियाँ देकर मैं हरकी पैड़ी अपनी मण्डलीसे आ मिला। श्रीगंगाजीका स्नान कर नित्यनियममें प्रवृत्त हो, पूजापाठसे निपटकर एक बजे वापस लौटे। रास्तेमें ही नृसिंहभवन पड़ता है। अतः उनसे मिले, उनकी पत्नीके दस्त-पेशाब खुल गया था। वह स्वस्थ-सी दिखायी देती थी। हमें देखकर दोनों नत-मस्तक

मिले और अपने पूर्वकृत बुरे बर्तावके लिये अनुनय-विनय करने लगे। वे करुणभावमें सराबोर थे। संतजीने कहा—'भाईजी! हमें भगवान्‌ने आपकी तुच्छ सेवाका सौभाग्य दिया, यद्यपि हम इस लायक नहीं थे। आप कुछ दुःख न मानें। मनुष्यको जीना है तो मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्रकी सेवाके लिये जीना है, न कि अजागलस्तनकी भाँति व्यर्थ जीवन बिताना है।' 'आप क्या कार्य करते हैं?' संतजीने पूछा। तब उन्होंने कहा—'मैं राज्य-तहसील-कर्मचारी हूँ। बी० ए० हूँ और यह भी पढ़ी-लिखी है।' 'बहुत अच्छा', संतजीने कहा—'और कुछ सेवा बताइये?' नवयुवकने कहा—'प्रभु! हमारी सुबुद्धिके लिये कुछ नियम बतावें ताकि हमारे जीवनका कल्याण हो। मैं आपका कृतज्ञ हूँ।'

संतजी—'लीजिये, यह गीता और रामायणका गुटका। आप दोनों सुशिक्षित हैं, अतः इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें और मनन करें। संत-समागम किया करें। गीताप्रेसकी धार्मिक सस्ती पुस्तकें पढ़ा करें, इससे आपका कल्याण होगा। भगवान् आपको सद्‌बुद्धि दें।' नवयुवक—'संतजी! आपसे मैं गंगायात्राके उपलक्ष्यमें प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब कभी ऐसी उद्दण्डता नहीं करूँगा और आपके आदेशोंका प्राणपणसे पालन करूँगा।'

बादमें हम अपने स्थानपर लौट आये। वे सुखी होकर अपने गन्तव्य स्थानपर चले गये।

संतजीकी इस सच्ची साधुता, नम्रता, सहिष्णुता और सर्वहित-बुद्धिका मुझे आज-दिनतक स्मरण है। वास्तवमें हमें सबके साथ सहानुभूतिपूर्ण सद्‌व्यवहार करना चाहिये। स्वार्थके वशीभूत होकर अमानुषी व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये।

—डॉक्टर एस० आर० डी०

भाईका स्नेह

रामविलासजी तथा हरमुखरायजी दोनों भाई थे। घर सम्पन्न था। किसी कारणवश दोनोंने अलग हो जाना अच्छा समझा। बँटवारा हो गया। दोनों भाई अलग-अलग कारोबार करने लगे। आपसमें बिना संदेह लेन-देन भी चलता ही था। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था। दोनोंके लड़के बड़े हो गये और व्यापारका काम करने लगे। पर भाग्यकी बात रामविलासका व्यापार उन्नत होता गया और हरमुखरायका गिरता गया। लगभग सत्तर हजारसे कुछ अधिक रुपये रामविलासकी फर्मके हरमुखरायकी फर्मके नाम पड़ते थे। हरमुखरायकी फर्म फेल हो गयी। रामविलासको बहुत दुःख हुआ; परंतु सारा कारोबार लड़कोंके हाथमें था। अतः वे कुछ कर नहीं सके। जमीन-जायदाद दोनोंके पास अभी थी। रामविलास बहुत बूढ़े हो गये थे। उनके मनमें एक दिन यह विचार आया कि 'हमारी फर्मके बहुत बड़ी संख्यामें रुपये भाई हरमुखरायमें पावने हैं। हरमुखराय भी मरणासन्न हैं और मैं भी मरणासन्न हूँ। हरमुखरायके लड़के गरीबी हालतमें हैं। रुपये यदि उनके नाम पड़े रहे और मेरे लड़कोंने हरमुखरायके लड़कोंको तंग किया या उनकी जमीन-जायदादपर मन चलाया—यद्यपि लड़के ऐसे अभी हैं नहीं—तो बहुत बुरी बात होगी।'

यह सोचकर वो अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके एक दिन गद्दीपर पहुँचे। उनके अपने नाममें लगभग इतने ही रुपये फर्ममें जमा थे, जो मरनेपर उनके लड़कोंकी ही सम्पत्ति होते। उन्होंने

जाकर मुनीमसे बही माँगी और भाई हरमुखरायके खातेके सारे रुपये ब्याजसमेत जमा करके अपने खातेमें नाम लिख दिये और हरमुखरायका खाता चुकता कर दिया। हरमुखरायको इसकी सूचना भी नहीं दी।

हरमुखरायको इस बातका पता भी नहीं था। वे बड़े ईमानदार थे। अपनी जमीन-जायदाद बेच-बेचकर वे लोगोंके रुपये चुका रहे थे। बड़े भाईके ऋणको भी वे एक बड़ी जमीन तथा मकान बेचकर चुकानेकी व्यवस्था कर रहे थे। इसी बीच उन्हें पता लगा कि बड़े भाई साहबने मेरा खाता अपने रुपये देकर चुकता कर दिया है तो उनके नेत्रोंसे स्नेहके आँसू झरने लगे। वे भाईके चरणोंमें आये और बोले—'आपने ऐसा क्यों किया? मैं तो रुपये दे ही रहा था।' बड़े भाई रामविलासके नेत्र भी झरने लगे, उन्होंने भाईको गले लगा लिया। दोनों रोने लगे। यह दृश्य देखकर रामविलासजीके भले लड़कोंका हृदय भी द्रवित हो गया। फिरसे दोनों फर्म एक कर लिये और आनन्दका स्रोत बह उठा।

—गोविन्द राम

भगवद्दर्शन*

(क)

त्रिभुवननाथ सड़कपर खड़ा 'हाय! हाय!' कर रहा था। उसकी दशा अत्यधिक दीन थी। बूढ़ा, कम्पायमान, दृष्टिहीन, डगमग-डगमग पाँव, रक्तहीन, बहुत फटे-पुराने वस्त्र।

'हाय कपड़ा! हाय कपड़ा!'

मगर किसीको क्या?

उसकी बड़ी चिल्लाहट थी। मैंने अपना दफ्तरका काम बंद कर दिया। उसे अपने पास बुलवाया, उसे बहुत ही सत्कार,प्रेम, आत्मीयताके साथ कुर्सीपर बैठाया। उसके नेत्रोंका जल रुक गया।

मैंने उससे मिष्ट भाषण किया।

एक 'दुअन्नी' मात्र मैंने 'उसको' दी। अहा! न तो 'उसकी' गद्गदताकी ही कुछ सीमा रही और न 'उसके' आशीर्वादोंकी बौछार की। उसीको नमस्कार।

(ख)

वह मेरे जीवनका सबसे खास दिन था। उस दिन 'उसने' मुझे निहाल कर दिया।

कुष्ठसे गलित वह बंद कोठरीमें पड़ा था। टट्टी-पेशाब सब वहीं। दुर्गंध अपार थी, मगर मैं उसे सुगन्ध मानता हूँ। उसने मुझे

---

* एक आदरणीय 'बन्धु'के सम्पादकके नाम आये हुए पत्र।
—सम्पादक

स्वयं आवाज देकर बुलाया—'मुझे जल ला दोगे?'

मैं सन्न रह गया! 'यह त्रिलोकीनाथ अखिलेश्वर है! मेरी परीक्षा ले रहा है।' मैंने अपनेसे कहा।

वह बहुत ही कराह रहा था, जिस चारपाईपर वह पड़ा था, उससे अधिक खराब चारपाई संसारमें न होगी।

मैंने सद्भावपूर्वक सावधानीसे उसकी आज्ञा-पालन किया। कुल एक लोटा जल बाहर नलसे भरकर ला दिया। उसका टूटा-फूटा लोटा बहुत ही दयनीय दशामें था। उस रोज 'वह' बहुत उपकृत हुआ। बहुत आशीर्वाद देता रह गया।

(ग)

कल 'वह' चोरी करते पकड़ा गया और वह भी एक लड्डूकी! लड्डू कैसा—आटे और गुड़का।

'वह' बहुत शर्माया और पानी-पानी हो गया।

हमलोगोंने कुछ भी बुरा न माना! द्वापरमें 'वह' माखनचोर था, अब लड्डू चुराता है, तो नयी बात क्या हुई!

यह 'उस' की रिपोर्ट है। × × × हमें आप यह समझाइयेगा कि ऐसी दशामें हम 'उसे' आपका प्रणाम कैसे निवेदन किया करें।

(घ)

परसों मैंने 'उस' का पक्ष लिया और विपक्षियोंके प्रति कड़े शब्दोंका प्रयोग किया।

'वह' बुरी तरह हाँफ रहा था और उसपर मार पड़ रही थी। उसे ऊपर चढ़नेके लिये बाध्य किया जा रहा था। 'वह' लाचार था, क्योंकि जिस गाड़ीमें 'वह' जुता था, उसपर गन्नेका बे-तोल बोझ लदा था। हाय! उस समय 'वह' एक मूक बेबस भैंसेके रूपमें था।

''मैंने क्रोधका प्रयोग किया। 'यदि' 'इस'के जिह्वा होती तो 'यह' तुम्हारे खिलाफ वाणीका प्रयोग करता, यह तुमपर अदालतमें दावा करता और तुम्हें सजा भोगनी पड़ती! तुम अन्यायपर तुले हो! तुमने दयाको तिलांजलि दे दी है। भगवान्‌का खौफ करो''—मैंने 'उसे' पीटनेवालोंको चेतावनी दी। वे लोग शर्माये और हँसे भी। उन्होंने अपनी गलती मान ली और 'उसे' पीटना बंद कर दिया। वह अब स्वयं ही जोर लगाकर ऊपर चढ़ रहा था। 'वह' मुझे आशीर्वाद देता हुआ प्रतीत होता था। 'उस'को नमस्कार! उसकी जय।

मैंने उन लोगोंसे फिर कहा—'ज्यादा बोझ मत लादा करो। रहम करो, जरा शर्म किया करो।' उन लोगोंने स्वीकार किया।

फिजूलखर्चीका परिणाम

कुछ समय पहले मैं नागपुर गया था। वहाँ मैं एक गुजराती लॉजमें ठहरा। इस लॉजमें बम्बईकी एक कम्पनीमें सेल्समैनके पदपर काम करनेवाले एक भाई ठहरे हुए थे। बम्बईके सेल्समैन श्रीधीरूभाईने जो अपने अनुभवकी बात बतायी, वह बहुत उपयोगी जान पड़ती है।

'पिताजी बचपनमें ही स्वर्गवासी हो गये थे। इससे घरकी सारी जिम्मेवारी मुझपर आ पड़ी थी। उस समय मेरी उम्र सत्रह वर्षकी थी। मेरे मामाका घरका कारखाना था, इससे मुझे नौकरी देनेके लिये मैंने उनसे कहा, पर उन्होंने अभी छोटी उम्र है, कहकर मुझे नहीं रखा। फिर बम्बईमें एक सेल्समैनके पदपर नियुक्त हुआ। इसलिये मुझे हरेक बड़े शहरमें जाना पड़ता। अपने एक दूसरे भाई भी बम्बईकी एक प्रसिद्ध कम्पनीमें नौकरी करते थे। उन्हें मासिक पाँच सौ पचास रुपये वेतन मिलता था, इसके अतिरिक्त उन्हें प्रति दिन १८ रुपये भत्ता मिलता था। एक बार मैं कम्पनीके कामसे दिल्ली गया था। वहाँ वे भाई भी आये हुए थे। मैं तो दैनिक एक रुपया किरायेके कमरेमें ठहरा था; परंतु उन्होंने पाँच रुपये रोजके भाड़ेका कमरा ले रखा था। दोनों गुजराती होनेके कारण हमलोगोमें बड़ा मेल-जोल हो गया। परंतु उनको जब मैं पैसे उड़ाते देखता, तब मुझे बड़ा ही दुःख होता। दिल्लीमें उन्होंने मुझसे कहा—'चलो, होटलमें नाश्ता कर आयें।' मैं कपड़े

पहनकर तैयार हो गया, तब उन भाईने मुझसे कहा—'इस तरहके कपड़े पहननेवालोंको होटलमें नहीं घुसने दिया जाता। उस होटलमें जानेके लिये अच्छी-से-अच्छी पोशाक चाहिये।'

मैंने कहा—'इससे अच्छे कपड़े मेरे पास नहीं हैं।' तब उन्होंने मुझे अपने अच्छे कपड़े पहनाये और नेकटाई गलेमें बाँधी। हमदोनों 'अपटूडेट' होकर होटलमें पहुँचे। मैंने अपने जीवनमें कभी न देखी हुई व्यवस्था वहाँ देखी। वहाँ हमलोगोंने आइसक्रीम, चाय आदि खाने-पीनेके साथ ही नाश्ता भी किया। एकाध घंटा वहाँ बीता। फिर होटलका बिल आया। हाथमें लेकर मैंने देखा साढ़े सत्रह रुपयेका बिल था। मैंने तुरंत ही बिल उन भाईको दे दिया। मेरी जेबमें तो शायद इतने पैसे भी नहीं थे। उन भाईने बिलके साथ ही डेढ़ रुपया नौकरको इनाम दिया। इस प्रकार उन्होंने उन्नीस रुपये चुकाये। तदनन्तर हमलोग अपने कमरोंमें वापस आ गये।

इस बातको छः-सात महीने बीते होंगे। मैं घूमता-घामता कलकत्ते पहुँचा और वहाँ 'गुजराती समाज' के मकानमें गया। वहाँ मैंने उन भाईको देखा। पर यह क्या? क्या ये वे ही भाई हैं जो मुझे दिल्लीमें मिले थे? मनमें शंका हुई। आँखोंने बार-बार सावधानीसे देखकर निश्चय किया कि 'हैं तो वे ही'। अन्तर इतना था कि आज न तो उस दिन-सरीखे कपड़े थे, न सिरमें तेल ही था। आँखोंमें उस दिनकी मादकताके स्थानपर दरिद्रता भरी थी। गोरे मुखपर श्यामता छा रही थी। मैंने पूछा—क्यों भाई! यों निस्तेज-से कैसे हो रहे हैं? प्रथम श्रेणीके लॉजमें फर्स्टक्लास किरायेके कमरेमें उतरनेवाले आप यहाँ कैसे पड़े हुए हैं?'

उन्होंने धीरेसे कहा—'भाई! वह नौकरी छूट गयी! अब मैं

बेकार हूँ। कहीं भी काम नहीं मिलता।'

मैंने कहा—'आप इस समय दुःखी हैं, इसलिये मेरा आपसे कुछ कहना उचित तो नहीं है, तो भी मैं कहता हूँ कि उस नौकरीके समय आपकी आमदनी एक हजार रुपये मासिक थी। उस समय आपने आधे रुपये बचाये होते तो भी आज आपके पास पचीस हजार रुपयेकी बचत कर सकते और उन रुपयोंसे आज चाहे जैसा रोजगार कर सकते तथा इस बेहाल परिस्थितिसे बच जाते!'

उन्होंने कहा—'अब तो जो होना था सो हो चुका। इस समय तो आप मुझे पचास रुपये उधार दीजिये।'

मेरे पास केवल पैंतीस रुपये थे और मुझे पटने जाना था। इसलिये मैं उनको उनमेंसे केवल पाँच रुपये दे सका और वहाँसे चल पड़ा। एकाध महीनेके बाद मुझे समाचार मिला कि उन भाईने जगत्‌से ऊबकर आत्महत्या कर ली।

उन भाईकी यह बात सुनकर मेरे मनमें आया कि 'समाजका अधिकांश आज भोग-विलासकी अँधेरी गुफासे बाहर निकलनेके बदले अधिक-से-अधिक नीचे गहराईमें उतरता जा रहा है।'

—जयन्तीलाल लवजी भाई पुजारा

देवीकी कृपा

सन् १९४२ के जूनकी बात है। उस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा काशीका तापमान अधिक था। प्रातःकाल ८ बजेसे ही 'लू' अपना प्रभाव दिखाने लग जाती थी। काशी-निवासी 'लू' की गरम हवाके झोंकोसे परेशान थे। बहुत-से लोग तो लूके कारण मृत्युके शिकार भी बन चुके थे। उस भयंकर गरमीके समय मेरे ज्येष्ठ पुत्र नरेशको, जो उस समय दो वर्षका था, बुखार आने लगा। बुखारके कारण अब वह चिड़चिड़ा-सा रहने लगा। उसके स्वाभाविक मनोहारी 'हास्य' के स्थानको 'रुदन' ने ले लिया था। उसके लिये माता या गौका दूध भी पीना मुश्किल हो गया था। उसका शरीर दिन-अनुदिन जर्जरीभूत होने लगा। बालककी नन्हीं-सी अवस्था और उसके तरुण क्लेशको देखकर मेरा चित्त डाँवाँडोल और अशान्त रहने लगा।

मैं खिन्नमनस्क होकर काशीके सुप्रसिद्ध डॉक्टर सत्येन्द्रनाथ मुकर्जीके पास रुग्ण बालकको लेकर गया। डॉक्टर साहबने बालकको देखकर दवाकी व्यवस्था कर दी। कई दिनोंतक इलाज चलता रहा, परंतु लाभके बदले उत्तरोत्तर रोग बढ़ता ही गया। बालक अत्यधिक कमजोर होता जा रहा था। उसी समय बालकके दाहिने हाथमें एक फोड़ा भी हो गया। ज्वरकी वेदनासे बालक त्रस्त था ही, अब रही-सही कमीकी पूर्ति फोड़ेने कर दी। अब बालक अधिक विचलित हो गया। बालककी स्थिति देखकर मेरी बुद्धि बेकाम हो गयी थी। मस्तिष्कमें बार-बार

विभिन्न प्रकारके विचारोंके तूफान उठते थे और ये कुछ देर बाद स्वतः विलीन हो जाते थे। उस समय मुझे अपने शरीरतककी सुध न थी। मुझे किसीसे बोलना-चालना भी एक प्रकारका बोझ प्रतीत होता था, किसी भी काममें चित्त नहीं लगता था। खाना-पीनातक अव्यवस्थित हो गया था। निद्रादेवी तो मानो उस समय मुझसे रूठकर कुछ दिनोंके लिये कहीं अन्यत्र चली गयी थीं।

एक दिन बालकको अकस्मात् रह-रहकर दस्त आने लगे। अधिक दस्त होनेके कारण बालककी अवस्था विशेष चिन्तनीय हो गयी। यहाँतक कि वह अपनी मातातकको पहचाननेमें असमर्थ हो गया और उसके श्वास आदिकी प्रक्रियाएँ भी अब विरूपतामें परिवर्तित हो गयीं। ऐसी स्थिति देखकर परिवारके सभी सदस्य घबरा गये। मैं 'मियाँकी दौड़ मस्जिदतक' के अनुसार पुनः डॉक्टर मुकर्जीके यहाँ उन्हें बुलानेके लिये गया। डॉक्टर साहब उस समय अपने रोगियोंसे घिरे होनेके कारण विशेष व्यस्त और व्यग्र थे। मुझे उस समय एक-एक क्षण पहाड़-सा प्रतीत हो रहा था। मैं होश-हवाशमें न था। यह नहीं पता था कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, क्यों खड़ा हूँ और किससे बात कर रहा हूँ। किसी प्रकार अपने-आपको सँभालकर मैंने डॉक्टर साहबसे बालककी चिन्तनीय स्थिति सुनायी और तत्क्षण उन्हें अपने घर चलनेके लिये कहा। डॉक्टर साहब तुरन्त मेरे साथ घर आ गये। बालकको देखकर उन्होंने कहा—'आप घबरायें नहीं, बच्चेको 'टायफाइड' है, शीघ्र ही ठीक हो जायगा।' डॉक्टर साहबके ऐसा कहनेसे मुझे कुछ संतोष मिला। मैं बड़े धैर्य और विश्वासके साथ मनोयोगपूर्वक डॉक्टर साहबकी दवा कर रहा था। परंतु दुर्भाग्यवश बालकको कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं हो रहा

था। बालककी नाजुक स्थिति देखकर घरके सभी सदस्योंकी राय हुई कि अब किसी दूसरे डॉक्टरका इलाज किया जाय। किंतु मैं घरवालोंके इस विचारसे विरुद्ध था। मेरी इस सम्बन्धमें सदासे यही धारणा रही है कि रोगीकी चिकित्सा अच्छे-से-अच्छे एक ही डॉक्टरकी की जाय। हाँ, बीच-बीचमें अन्य डॉक्टरोंका परामर्श भी ले लिया जाय। मैंने अपनी विचारधाराके अनुसार मुख्य चिकित्सक डॉ० मुकर्जीको ही रखा, किंतु विचार-विमर्शके लिये अन्य कई डॉक्टरोंको भी बुलाया। सभी डॉक्टरोंने डॉ० मुकर्जीकी दी जानेवाली दवाकी पुष्टि की। तदनुसार डॉ० मुकर्जीकी दवा निरन्तर चालू रही। परंतु बालककी हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती ही जा रही थी। अब सब लोगोंको विश्वास हो गया कि 'यह बालक अब चंद घंटोंका ही मेहमान है।' बालकके विषयमें सभी लोगोंकी यह धारणा देख मेरा रहा-सहा धैर्य टूटता जा रहा था। बालककी माताकी स्थिति तो अवर्णनीय थी। वह तो लगभग दो सप्ताहसे खाना-पीना और निद्रातकको भूल चुकी थी। मैं दवासे निराश हो गया। उसे बंद कर केवल भगवान्‌की शरण ली। भगवत्कृपासे अकस्मात् मुझे अपनी 'कुलदेवी'* का स्मरण हो आया, जिनकी मान्यतासे हमारे

* देवीकी स्थापना तथा मन्दिर किसने कब बनवाया, इसका यथार्थ पता नहीं है। इनके सम्बन्धमें दो किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इन देवीकी स्थापना महर्षि दुर्वासाने की थी और कुछ लोगोंका कथन है कि इन देवीकी स्थापना पाण्डव-कुलभूषण भीमने की थी, इसलिये इसका नाम 'भीमादेवी' पड़ा—

'भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।' (दुर्गासप्तशती ११ ।५२)

इन देवीके सम्बन्धमें 'कल्याण' के विशेषांक 'शक्ति-अंक' में भी लिखा गया है।

परिवारका सर्वदासे कल्याण होता चला आ रहा है। इनका प्राचीन भव्य मन्दिर जि० रोहतक (हरियाणा)-के सुप्रसिद्ध कस्बा 'बेरी' में है। वहाँ देवी अपने भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली मानी जाती हैं। इन देवीका विशाल मेला चैत्र और आश्विन—इन दोनों नवरात्रोंमें लगता है, जिनमें बम्बई, कलकत्ता आदि सुदूर स्थानोंसे बड़े-बड़े सेठ-साहूकार भी अधिक संख्यामें उपस्थित होते हैं।

इन्हीं देवीके धाममें जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनके समक्ष हमारे परिवारके सभी बालकोंके 'मुण्डन-संस्कार' करानेकी प्रथा हमारे वंशमें सदासे चली आ रही है। इधर कुछ समयसे हमलोगोंके यहाँ अपनी 'कुलदेवी' के यहाँ जाकर बालकोंका 'मुण्डन-संस्कार' करना बन्द हो गया था। मैंने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे अपनी 'कुलदेवी' की शरण ली और मनौती मानी कि "मैं अपने बालकके अच्छा होनेपर अवश्य ही सपत्नीक बालकको आपके धाममें ले जाकर यथासमय इसका 'मुण्डन-संस्कार' करा दूँगा।" साथ ही मैंने दूसरी मनौती प्रत्यक्ष-सिद्धिदात्री श्रीविन्ध्यवासिनी देवीकी, जो जि० मिर्जापुर (उ० प्र०)-में हैं, मानी कि 'बालकके अच्छा होनेपर बालकके सहित सपत्नीक आपके दर्शन करूँगा।'

इस प्रकार उपर्युक्त सद्यः सिद्धिको देनेवाली दोनों देवियों (मूर्तियों)-की मनौती माननेके कुछ देर बाद एकाएक मैंने अपने बालकमें अद्भुत परिवर्तन देखा। वह अब कुछ-कुछ चैतन्यावस्थामें हो आया। शनैः-शनैः अपनी माताको पहचानने लगा तथा उसका दुग्ध-पान भी करने लगा। ज्वर कम हो गया और उसका फोड़ा भी फूट गया। अब वह विशेष प्रफुल्लित दीख पड़ा। बालकमें

आश्चर्यजनक लाभको देखकर मेरे हर्षका ठिकाना न रहा। मैं अपनी 'कुलदेवी' और 'श्रीविन्ध्यवासिनी देवी' की अपूर्व चमत्कारपूर्ण दैवी शक्तिपर मुग्ध हो गया और मेरी उसी दिनसे इन दोनों देवियोंपर अटूट श्रद्धा हो गयी।

अब केवल बालककी कमजोरी शेष रह गयी थी। दोनों देवियोंके नामोच्चारणपूर्वक प्रसादरूपमें दिया हुआ जल एवं दुग्ध अब बालकके लिये अमृतरूपमें काम करने लगा, जिससे बालक चन्द्रकलाकी तरह दिनोंदिन स्वस्थताकी ओर प्रवृत्त हो गया, इस प्रकार कुछ ही दिनोंमें वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। इस अद्भुत प्रत्यक्ष देवीशक्तिको देखकर मेरा सर्वदाके लिये दृढ़ विश्वास हो गया है कि—'जो मनुष्य श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक देवी-देवताओंकी शरण स्वीकार करते हैं, वे अवश्य ही समस्त प्रकारके कष्टोंसे मुक्त होकर आनन्दरूपी समुद्रमें गोते लगाते हैं।'

—वेणीराम शर्मा गौड, वेदाचार्य

दयालु भाभी

प्रयाग-कुम्भमेलेकी बात है—हमलोग जहाँ ठहरे थे, वहाँ उसके बगलमें ही एक सज्जन ठहरे थे। उनके साथ उनका दूर सम्पर्कका एक चचेरा भाई तथा एक नौकर था। दो-चार दिन बाद ही उनकी धर्मपत्नी कलकत्तेसे घर जाती हुई कुम्भ-स्नानके लिये पतिके पास आकर ठहर गयी। उसके साथ उसका एक छोटा बच्चा था। वह घर जा रही थी, इससे उसके पास लगभग दस हजारका गहना था, जो एक पीतलके डिब्बेमें बन्द था और वह डिब्बा ट्रंकमें रखा था। ये बातें मुझको पीछे मालूम हुईं। घटना ऐसी हुई कि तीन-चार दिनके बाद ही वह गहनेका डिब्बा चोरी हो गया। ट्रंकका ताला ज्यों-का-त्यों था। किसीने दूसरी चाबी लगाकर ट्रंकसे गहनेका डिब्बा निकाल लिया था। नौकरसे पूछा गया, आस-पास खोज हुई; पर कहीं पता नहीं चला। बेचारे दम्पति सिर पीटकर रह गये। कुछ दिनों बाद गहने बेचते हुए कानपुरमें एक आदमी देखा गया। उसपर संदेह हुआ। उससे कुछ भले लोगोंने पूछा, पकड़ानेकी धमकी दी। उसने बतलाया कि मैंने यह गहना प्रयागमें एक सज्जनसे दो हजारमें खरीदा था। खोज की गयी तो पता लगा कि वह चचेरा भाई ही चोर था। भाईको बहुत गुस्सा आया। उसने पुलिसमें रिपोर्ट करके चचेरे भाईको पकड़वाना चाहा। पर उनकी पत्नीने रोक दिया और चचेरे भाईको बुलाकर पूछनेके लिये कहा। उसे बुलाया गया। वह आकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसने नम्रतासे स्वीकार किया

कि 'चोरी मैंने की है। लड़कीके विवाहमें दस हजार रुपये लगे थे, उसमेंके साढ़े चार हजार रुपये अभी देने थे। एकका बड़ा तकाजा था, उसके यहाँ दूसरी लड़कीका कुछ जेवर बंधक रखा था, रुपयेवालेका तकाजा था तथा लड़कीके ससुरालवाले लड़कीको लेने आ गये थे, उसका गहना देना आवश्यक था, इसलिये मैंने गहना चुरा लिया। गहना कितना था—मैंने देखा ही नहीं। मुझे तो रुपयेकी आवश्यकता थी, अतः मैंने उसी दिन दो हजारमें उसे बेचकर रुपये महाजनको भेज दिये। अब आप जैसा उचित समझें करें।'

यह सुनकर दयामयी भाभीका हृदय पिघल गया। उसने पतिको समझा-बुझाकर राजी किया। दो हजारमें गहना खरीदने-वालेको बुलाया गया। वह भला आदमी था तथा पुलिसद्वारा पकड़े जानेसे डर भी रहा था। उसने दो हजार रुपये तथा उसका उचित ब्याज लेकर गहना लौटा दिया। उन सज्जनने पत्नीके कहनेके अनुसार ढाई हजार रुपये और भी चुकाकर चचेरे भाईको ऋण-मुक्त करा दिया और उसे अपनी फर्ममें अच्छे वेतनपर नियुक्त भी कर लिया। उसने रोम-रोमसे आशीर्वाद दिया। धन्य!

—हरसुखदास गुप्त

आदर्श मित्र

पुनीत वाराणसीवासी 'दूजो हरिचन्द' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, खड्गविलास-प्रेसके संस्थापक, रेपुरानिवासी बाबू श्रीरामदीनसिंहजीके परम मित्र थे। भारतेन्दुजी बड़े उदार थे। उनका सदा ही मुक्तहस्त रहता था। इसमें उनकी सारी सम्पत्ति समाप्त हो गयी, बल्कि डेढ़ लाख रुपयोंका ऋण एक सज्जनका रह गया, जिसकी चर्चा उन्होंने अपने भाई-भतीजों या दौहित्रसे भी नहीं की थी।

एक दिन उन्होंने अपने अभिन्न मित्र बाबू रामदीनसिंहको बुलाकर उनसे और सारी बातें बतायीं और कहा कि 'जिनके रुपये हैं, वे सज्जन कभी मुझसे माँगने नहीं आये। इस कारण मुझे इस ऋणके न चुकानेका और भी बड़ा दुःख है।'

भारतेन्दुके फक्कड़ स्वभावसे परिचित, बाबूसाहबने तुरंत कहा—'अच्छा तो यह ऋण चुकाना मेरे जिम्मे रहा। आप इसकी तनिक भी चिन्ता न करें। इस ओरसे बिलकुल निश्चिन्त रहकर भगवत्स्मरण करें।'

बाबू रामदीनसिंहकी डेढ़ लाख रुपयेका ऋण चुका देनेकी बात सुनकर लाखोंकी सम्पत्ति लुटा देनेवाले भारतेन्दुके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। इसी दशामें उन्होंने कागजका एक टुकड़ा बाबू रामदीनसिंहके हाथोंमें थमा दिया, जिसपर लिखा था—

'मेरी सारी पुस्तकों (१७५)-के प्रकाशनका सर्वाधिकार खड्गविलास-प्रेसको ही है।'

बाबू रामदीनसिंहने उसे पढ़ा और तुरन्त फाड़कर उन्हींके सामने फेंक दिया और कहा—'यह तो मित्रता निभाना नहीं हुआ, व्यापार हुआ।'

ये दोनों आदर्श मित्र धन्य थे!

(पद्मभूषण, आचार्य श्रीशिवपूजनसहायके कथनके आधारपर)

सौजन्यता

सन् १९३६ में एक अमेरिकन महिला, टोकियो नगरके कष्टप्रद ग्रीष्मसे त्राण पानेके लिये जापानके उत्तरमें समुद्रतटपर स्थित एक स्वास्थ्यप्रद छोटी-सी बस्तीमें अपनी सप्तवर्षीया कन्याके साथ निवास कर रही थी। इस बस्तीका नाम टाका-पयामा है। रेलका स्टेशन सेनडाई वहाँसे बीस मील दूर है और जिस पहाड़ीपर स्थित बँगलेमें यह रहती थी, वहाँसे पक्की सड़क भी आधी मील दूर है। वहाँपर कोई डॉक्टर नहीं था और दवा भी सेनडाईमें ही मिल सकती है।

एक दिन सहसा कन्याके मुखमें छाले हो गये और उसको ज्वर भी हो गया। माँने टोकियो-स्थित विशाल अमेरिकन अस्पताल सेंट लूकको तारद्वारा बच्चीकी दशासे सूचित किया और वहाँसे उत्तर आया कि 'एक विशेष ओषधिके ४० प्रतिशत घोलका मुखके छालोंपर प्रयोग करो।' माता टैक्सी कारमें जाकर सेनडाईसे दवा बनवा लायी, किंतु उस घोलके एक ही बारके प्रयोगसे बच्चीका मुख जल गया और वह चीत्कार कर रोने लगी। माता समझ गयी कि कोई बड़ी भूल हो गयी है। इतनेमें ही वहाँका तार बाबू आया और कहने लगा कि 'औषधका घोल भूलसे ४ प्रतिशतके स्थानपर ४० प्रतिशत तारमें लिखा गया था, जिसके लिये वह क्षमा-प्रार्थना करने आया है।'

इधर बच्चीका कष्ट असह्य हो गया। रातको टोकियोको जानेवाली डाकगाड़ीके लिये समय नहीं रहा था। इसलिये

दिनकी पैसेंजर गाड़ीसे ही जाना होगा। जैसे-तैसे रात कटी, किंतु कन्याका सारा मुखमण्डल सूज गया था, उसपर काले-काले धब्बे पड़ गये थे और वह ज्वरसे बेहोश हो रही थी।

बच्चीको टैक्सीतक पहुँचानेके लिये वह समुद्रतटपर मछुआरोंके पास सहायता पानेके लिये गयी। यह सुनते ही कि बच्ची बीमार है, मछुआरोंने अपनी नावें समुद्रसे निकाल लीं और चार मछुआरे माताके साथ उसके निवासस्थानपर गये। माताका विचार था कि बच्चीको बाँसकी कुरसीपर बिठाकर उठाया जाय; किंतु मछुआरोंने कहा कि इसमें बच्चीको कष्ट होगा और उन्होंने बच्चीकी खाटके चारों पायोंको रस्सोंसे बाँधकर रस्सोंको अपने गलेसे लपेट लिया और हाथोंसे रस्सोंको पकड़कर धानके खेतोंकी मुंडेरोंपरसे चलकर बड़े आरामसे टैक्सीकी सीटपर बच्चीको लिटा दिया और तब वे चारपाई लेकर लौट गये। वापस आनेपर जब महिलाने उनकी सेवाके लिये पारितोषिक देना चाहा तो उन्होंने इनकार कर दिया कि 'बच्ची बीमार थी, उसको ले जाना ही था।'

पैसेंजर गाड़ीमें केवल तीसरे दर्जेके डिब्बे थे और बड़ी भीड़ थी। महिलाने रेलके गार्डसे कहा कि 'बच्ची बहुत बीमार है, वह छः सीटोंका किराया देगी । यदि छः सीटोंके गद्दे ब्रेकमें बिछा दें, जिसपर बच्चीको लिटाया जा सके और बच्चीके सिर तथा मुखपर बर्फ रख सकें।' माताकी प्रार्थना सुनकर गार्ड कहीं गया और थोड़ी ही देरमें वापस आकर बच्चीको स्ट्रेचरपर लिटाकर उठा लिया और एक भव्य सैलूनके दरवाजेपर ले गया। वहाँ जापानके उस समयके गृहमन्त्री कौनेसूके उसियाके सचिवने माताका अभिवादन किया और कहा कि 'गृहमन्त्रीको यह

जानकर दुःख हुआ है कि आपकी बच्ची बहुत बीमार है और उन्होंने कहा है कि आप उनके शयनागारको स्वीकार करें।' महिलाने कहा कि 'हम इनके शयनागारमें घुसकर इनको कैसे कष्ट दे सकती हैं।' इतनेमें गृहमन्त्री महोदय स्वयं आ गये और कहने लगे कि 'आपकी बीमार बच्चीको बिस्तरकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता मुझे पूरी करनेकी अनुमति देनेकी कृपा करें।'

बच्चीको एक सुन्दर बिस्तरपर लिटा दिया गया। उसके ऊपर पंखा चल रहा था। धूल और मक्खियोंसे बचावके लिये बच्चीके मुखपर एक उज्ज्वल जाली उढ़ा दी गयी। ठंडी पट्टी करनेके लिये धुले-धुलाये तौलिये रख दिये गये। अगले स्टेशनपर कई आइसबैग (बर्फ भरकर ठंडक पहुँचानेके थैले), एक बर्फका तकिया तथा दो सिल्ली बर्फ गाड़ीमें आ गयी। अवश्य ही गृहमन्त्रीने तारद्वारा यह प्रबन्ध किया होगा।

इस गाड़ीके साथ भोजनका डिब्बा नहीं था। यात्रीलोग अपने घरसे भोजन लाते थे अथवा स्टेशनोंसे मोल लेकर काम चलाते थे। महिलाको भोजनकी सुधि नहीं थी, किंतु बच्चीका मुख हरा करनेके लिये यवजल (Barley Water) और उसकी माताके लिये गरमागरम सुन्दर भोजन तथा फल आ गये।

दोपहरभर जब गाड़ी तपते मैदानोंमेंसे जा रही थी, एक कुली द्वारपर बर्फ तोड़ता रहा। जहाँ गाड़ी ठहरती, बर्फकी नयी सिल्ली आ जाती। बाहरके ताप तथा ज्वरके प्रकोपको कम करनेके लिये बच्चीका माथा, गर्दन तथा कंधे बर्फसे ढके रहे। पीछे सेंट लूक अस्पतालके डॉक्टरने कहा कि 'बच्चीके जीवनकी रक्षा बर्फ और शीत पेयके उपचारने ही की, क्योंकि इसीसे ज्वरका

प्रकोप और मुखकी सड़न रोकी जा सकी।'

जब गाड़ी डइमो (टोकियो नगरका एक स्टेशन) पहुँची तो रोगीको ले जानेवाली गाड़ी (Ambulance Car) स्टेशनपर तैयार थी। जब महिला मन्त्री महोदयका धन्यवाद करनेके लिये उचित शब्द ढूँढ़ रही थी, जो उसे मिल नहीं रहे थे। मन्त्री महोदयने कहा कि 'जो थोड़ी सेवा मैं कर सका, यह मुझे करनी ही थी; क्योंकि आप मेरे देशकी अतिथि थीं।' महिला कृतज्ञतासे गद्गद हो गयी।

—निरंजनदास धीर

एक अंग्रेजकी मानवोचित सहृदयता

मैं गत दिनांक २७-९-५९ को राष्ट्रभाषाकी परीक्षा देने बड़ा हापजान केन्द्रमें गया था। लगभग चार बजे सभी परीक्षार्थी अपने परचे लिखनेमें लगे थे। अकस्मात् बड़े जोरकी आवाज आयी। हमने बाहर जाकर देखा तो हमें एक जीप गाड़ी उलटी पड़ी दिखायी दी। उसके मुसाफिर जल्दी-जल्दी बाहर निकल रहे थे। गाड़ीमें आग लग गयी थी। दो यात्रियोंके शरीर खूनसे लथपथ थे और वे कुछ दूरपर बेहोश पड़े थे। हममेंसे कुछ लोग पानी लाकर आग बुझाने और दोनों बेहोश व्यक्तियोंको चेत करानेकी चेष्टामें लग गये। कुछ देर बाद उनको होश आया, परंतु उनमें एक पुनः बेहोश हो गया। बहुत लोग इकट्ठे हो गये। वहाँ कोई अस्पताल नहीं था। सब निरुपाय थे। कोई सवारी नहीं थी। अस्पताल लगभग दो माइल था। कई छोटी-बड़ी मोटरें, जीपें, ट्रकें आयीं, उनमें बैठे लोगोंने सब देखा। कुछने पूछा भी—सारा हाल तथा आवश्यकताकी जानकारी भी की; परंतु किसीके मनमें घायलोंको अस्पताल पहुँचानेकी नहीं आयी। मोटर आयीं, ठहरी और चली गयीं।

कुछ ही देर बाद एक कार आयी। उसमें एक अंग्रेज सज्जन थे, जो सपरिवार दुमदुमासे पानीतोला जा रहे थे। उन्होंने गाड़ी रोकी; सहानुभूतिके साथ सब पूछा और यह जाननेपर कि दो आदमियोंको चोट लगी है; जिनमें एक अभी बेहोश है, कहा—'मैं अपनी गाड़ीसे अभी इनको अस्पताल ले जाता हूँ। आपमेंसे

एक सज्जन मेरे साथ चलिये।' तदनन्तर उन्होंने अपने स्त्री-बच्चोंको किसी तरह आगेकी सीटपर बैठाया और स्वयं हाथ बँटाते हुए उन घायलोंमेंसे एक बेहोशको सीटपर लिटा दिया और दूसरेको सहारा देकर बैठा लिया। अस्पतालमें ले जाकर उनकी अच्छी तरह मरहमपट्टी करवायी तथा अन्य सब पूरी व्यवस्था करनेके बाद वे अपने घर गये। वे अंग्रेज सज्जन यह काम न करते तो दोमेंसे एककी तो मृत्यु हो ही जाती। धन्य है उनकी मानवोचित सहृदयता!

—देवीदत्त केजड़ीवाल

हककी रोटी

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। उस समय देशमें कपड़ेका राशनिंग था और कार्डसे कपड़ा मिल सकता था। जेतपुरमें ऐसी एक दूकानपर एक भाई कपड़ा बेचा करते थे। खेतीका मौसम अभी समाप्त ही हुआ था। मूँगफलीके दाम भी चढ़े हुए थे, अतः किसानोंको अच्छी रकम हाथ लगती थी। इस प्रकार मूँगफली बेचकर उसके रुपये लिये समीपवर्ती सरधारपुर गाँवके एक किसान भाई कुछ कार्ड लेकर कपड़ा खरीदनेको जेतपुर आये थे। कपड़ेवालेकी दूकानपर कुछ भीड़ थी। इसलिये किसान भाईने जेबसे कार्ड निकालकर दूकानदारको दिये और कहा कि 'मैं थोड़ी देरमें आता हूँ।'

दूकानदार भाईने उन कार्डोंको ज्यों-के-त्यों रख दिया। आये हुए कार्डोंका कपड़ा दे चुकनेके बाद दूकानदारने इन कार्डोंको हाथमें उठाया। कार्ड खोलकर देखनेपर अंदर सौ-सौ रुपयेके चौदह नोट मिले। क्षणभरके लिये दूकानदार नोटोंकी ओर देखते रहे। फिर उन कार्डोंको ज्यों-के-त्यों समेटकर गद्दीके नीचे रख दिया।

थोड़ी देर बाद वे किसान भाई आये। आवश्यक कपड़ा लिया। बिल बना। रुपये देनेके लिये उन भाईने जेबमें हाथ डाला और वे बिलकुल सहम गये। उनके मुखपर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

दूकानदारने पूछा, 'क्यों, अचानक क्या हो गया!'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं अभी आता हूँ' कहकर किसान भाई खड़े हो गये।

'पर क्या हो गया! बताइये तो सही। यों घड़ीभरमें ही कैसे घबरा गये।' दूकानदारने उनको पकड़कर बैठाते हुए कहा।

मालूम होता है—'जेबमेंसे कहीं गिर गये हैं। मैं होटलमें चाय पीने गया था। वहाँ देख आऊँ।'

'कितने थे और यों कैसे गिर गये ?'

'भाई! थे तो सौ-सौके पूरे चौदह नोट। मूँगफली बेचकर उसके दाम लेकर सीधा ही कपड़ा खरीदने चला आया था।'

'याद कीजिये कहीं घरपर ही तो नहीं छोड़ आये ?'

'नहीं-नहीं, कार्ड और नोट दोनों इस जेबमें साथ ही रखे थे। कहीं पड़ गये लगता है। नसीबमें होंगे तो मिल जायँगे। परंतु शहरोंके आदमियोंकी तरह हमलोगोंमें सावचेती नहीं होती, इसीसे ऐसा हो जाता है।' यों कहकर वे पता लगानेके लिये होटलमें जानेको खड़े हो गये।

परंतु उसी समय दूकानदारने कार्ड खोलकर नोट दिखाये, पूरे चौदह नोट। किसान भाईके मुखपर मुसकान छा गयी—'हैं, इन कार्डोंमें ही ये नोट रह गये ? यह तो आप इतने भले आदमी हैं; नहीं तो ये नोट थोड़े ही वापस मिलते। मेरा तो जी ही उड़ गया था। भगवान् आपका भला करें।'

'भाई! चौदह नोट देखकर अवश्य ही मन ललचा जाता है, परंतु अनीतिसे आया हुआ या लिया हुआ बिना हकका पैसा ठहरता तो है ही नहीं, घरमें पैसा होता है तो उसको भी टानकर ले जाता है। नीतिसे मिली हुई हककी रोटी खानेसे जो सुख और संतोष मिलता है, वह इस तरहकी अनीतिकी रोटीसे नहीं मिल सकता।'

वे किसान भाई बिलके रुपये चुकाकर भारी उपकारसे दबे

बार-बार कृतज्ञता प्रकट करते हुए कपड़ा लेकर चले गये। खोयी हुई वस्तु मिलनेपर जैसा आनन्द होता है, उसी आनन्दकी रेखा उनके मुखपर उमड़ रही थी। दूकानदारने भी यह देखकर अपने हृदयमें बड़े आनन्दका अनुभव किया। (अखण्ड आनन्द)

—सवाईलाल वड़ोदरिया